चिन्तनसुधा

कृष्णा गुप्ता

मिलने का पता :

तरूण प्रकाशन

२६ बी/बी, गान्धीनगर,

जम्मू तवी–180004



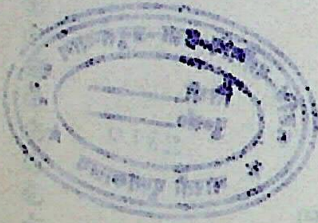
तरूण प्रकाशन जम्मू

मूल्य : **60.00** रुपये

प्रथम संस्करण

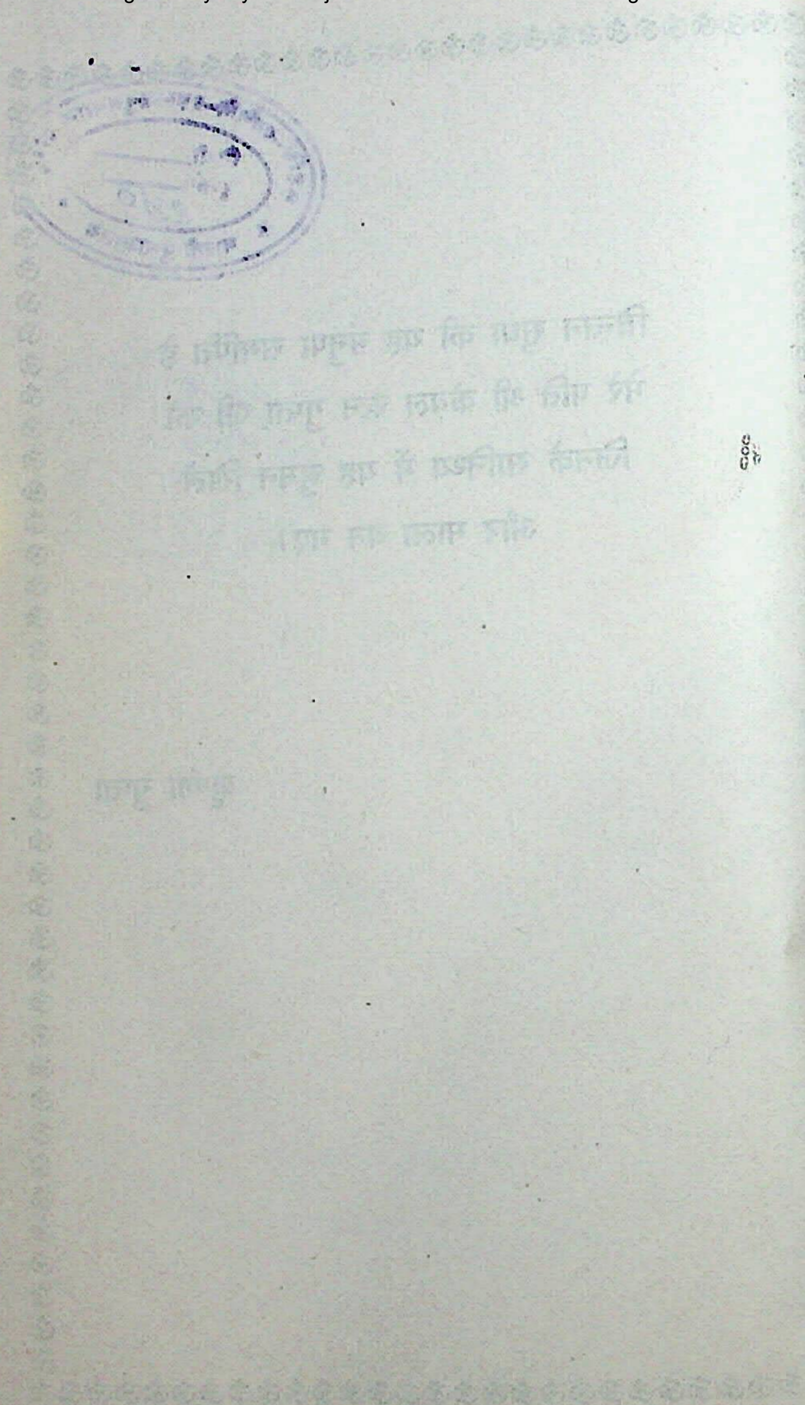
अैप्रल 1999

मुद्रक : दुर्गा प्रिन्टर्स अम्बफला, जम्मू।



चिन्तन सुधा की यह मंनुषा समर्पित है
मेरे पति श्री केवल रत्न गुप्ता जी को
जिनके सानिथ्य में यह सुमन खिले
और माला बन गए।

कृष्णा गुप्ता





दो शब्द



मानव मन के अथाह समुद्र में कहाँ स्थित हैं ज्वालामुखी और कहाँ छिपी हैं बर्फ से ढकी पर्वत श्रेणियाँ, कोई नहीं जानता कब ज्वालामुखी फट कर लावा उग़लने लगेंगे कब बर्फ से ढकी चोटियों की बर्फ पिघल कर प्रलय सिन्धु का ज्वार बन जाएँगी। यह भी किसी को ज्ञात नही होता। किन्तु यह सर्व विदित सत्य है कि जब संघर्षों के ताप से वाण्प बने भावों के जल बिन्दू अभिव्यक्ति की ठण्डक से कविता मेघ वन कर बरसते हैं तो उनकी सरस शीतल बौछार से जन--मानस को परम शन्ति उपलब्ध होती है। श्री मती कृष्णा गुप्ता की सहज आत्म वह अभिव्यक्ति इसका अपवाद नहीं। बह चाहे पद्य में हो या गद्य में। इनकी अभिव्यक्ति के अंकुर अनुभवों की धरती से फूटे हैं। इन्हों ने निजी जीवन में एवं अपने आस पास जो देखा, सुना और उसके प्रति मन की प्रतिक्रियाओं को यथा सम्भव लिपि बद्ध करने का प्रयास किया है।

श्रीमती कृष्णा गुप्ता को में इनके शिक्षा काल से जानती हूँ। एक अल्लड़ बालिका, लज्जाशील कुलवधू और विदूषी एवं सहन शीला ग्रहणी का सफल जीवन जिया है आपने और संजोया है ढेर सारा प्यार, दुलार एवं

सम्मान। जहां इनके संवेदन शील हृदय मे इन्हे साहित्य–सृजन की प्ररेणा दी है वहाँ विचारों की दृढ़ता ने इन्हें अपने सत्य संकल्पों को क्रियान्वित करने की शक्ति भी प्रदान की है।

संरलता की प्रति मूर्ति कृष्णा गुप्ता का स्वभाविक मुस्कान से पूर्ण मुख मण्डल अपने आप में एक सरल सुवोध कविता सा लगता है। और दर्शाता है प्रत्येक परिस्थिति को सहजता से ग्रहण करने के इनके स्वभाव को।

इनकी एक काव्य पुस्तक 'उच्छवास' १९८२ में प्रकाशित हो चुकी है। अब दूसरी पुस्तक 'चिन्तन सुधा' जिसके लिए दो शब्द लिखने का मुझसें आग्रह किया है, मेरे सामने है। इस पुस्तक की भूमि भावात्मक कम, विचारात्मक अधिक है। जैसा कि कृति के नाम "चिन्तन सुधा" से भासित होता है। प्रस्तुत पुस्तक, "विचारों के मन्थन से निकला नवनीत" है, को अपने पाठकों की रुचि को प्राञजलता तथा बोध प्रदान करने में सक्षम है।

इस पुस्तक के विचार परिस्थितियों, घटनाओं के प्रति मन की प्रतिक्रियाओं का परिणाम कहा जा सकता है। ऐसा लगता है श्रीमती कृष्णा गुप्ता ने अपनी अनुभूतियों को बिना किसी बनावट के ज्यों का त्यों सरल सुवोध भाषा में अभिव्यक्त कर दिया है किन्तु इस का यह अभिप्राय नहीं कि अभिव्यक्ति साहित्य के माप दण्ड के अनुसार नहीं। प्रस्तुत पुस्तक 'चिन्तनसुधा' को विचारों की विविधता से इन्द्रधनुषी छटा प्राप्त हुई है। जो स्वभाविक

एवं सुन्दर है।

इस पुस्तक के भाव पूर्ण छोटे छोटे परिच्छेद विविध रंगों के ऐसे फूल हैं जिनके रंगों में ही नहीं अपितु सुगन्ध एवं जातीय्ता में भी विविधता है। कहीं राज नेताओं के दोग़ले पन पर तीखा व्यंग्य है तो कहीं सामाजिक कुरीतियों पर गहरी चोट। कहीं परिवारिक सम्बन्धों की स्निग्धता की मोहकता है तो कहीं रिश्तों के खोखले पन के प्रति उपेक्षा एवं विरक्ति के भावों की सरल अभिव्यक्ति। रिश्तों के प्रति ईमानदारी से समर्पित व्यक्ति के प्रति उपेक्षा उनके अन्तर्मन को कैसे व्यथित करती है, और वह उस व्यथा की अभिव्यक्ति कैसे ओठों पर उंगली धर हृदय में समेट लेती हैं इसका आभास भी इनके परिच्छदों में यदाकदा परिलक्षित हुआ है।

ईश्वर और ईश्वर भक्ति की प्राप्ति के लिए सत्संग एकान्त वास, जप आदि की अनिवार्यता के सम्बन्ध में आपके विचार और इन साधनों को अपनाने से आन्तरिक शान्ति की उपलब्धि की नित्य सत्यता के सम्बन्ध में शास्त्रों के कथन आपकी अनुभूति में प्रत्यक्ष हुआ या नहीं, यह तो वही जानें, किन्तु पाठकों के लिए दिशा संकेत अवश्य है।

इसमें सन्देह नहीं कि श्रीमती कृष्णा गुप्ता के चिन्तन में इनके अध्ययन का महत्त्वपूर्ण योगदान है, किन्तु यह भी सत्य है कि इन्होंने अध्ययन से प्राप्त ज्ञान को अनुभव की निकषा पर परखा है, अतः चिन्तनसुधा में शास्त्रीय ज्ञान

के फलक पर अनुभूति के चित्र उकेरे गए हैं। दूसरे शब्दों में शास्त्रीय ज्ञान की खदान में से निकाले हीरों को आपने अनुभूति की खराद पर रगड़ कर चमका दिया है। प्रस्तुत पुस्तक में से कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं :–

१. सागर की विशालता कहीं से भी छुओ सागर ही छुआ जाएगा ! ऐसा ही ईश्वरीय ज्ञान के विषय मे सोचे तो मज़हबों के सारे झगड़े समाप्त।

२. कितना भी अध्ययन हो, मनन उससे परे है, कितना भी मनन हो, अनुभूति उससे परे है और साक्षात्कार अनुभूति से भी परे।

३. मन की मैल धोने के लिए एकान्त और प्रभु चिन्तन आवश्यक है। प्रभु चिन्तन के लिए मैला नहीं शुद्ध मन चाहिए।

४. राजनीति के अखाड़े में, नेतागिरि के मल्लयुद्ध में लड़ने के पीछे घायल होती है जनता।

५. आम जनता कुछ नहीं होती यद्यपि सारी राजनीति उन्हीं के सिरों के मोल पर खेली जाती है।

६. पैसे ने प्रेम की प्रतिष्ठा को मटियामेल कर दिया है। पैसे ने प्रसव की है सारी दुष्ट प्रवृत्तियां

७. समाज का सुधार अपनी चार दिवारी के भीतर से ही शुरू कर लें तो समाज अपने आप सुधर जाता है।

८. यदि बड़े बूढ़ों का आशीर्वाद ही नहीं प्राप्त हुआ और बच्चों का मस्तक श्रद्धा से नहीं झुका तो अवश्य कहीं कुछ गलत है।

९. जो सुनने को तैयार ही नहीं वह नष्ट भी हो जाए तो उसे कुछ कहना व्यर्थ है।

१०. पारस्पारिक विचारों के संगम में जब व्यवसायिक प्रतिद्वन्द्विता आ जाती है तब आदर्श धरे के धरे रह जाते हैं।

११. ए मन, तुम ईर्ष्या के अवगुण से दूर रहो, बस संसार के आधे कष्ट इसी में समाप्त हो जाएगें।

१२. भाग्य का निर्धन तो दयनीय है ही परन्तु जो पुरूषार्थ का निर्धन है उसे क्या कहें।

१३. जो नारी तप और त्याग की प्रतिमूर्ति नहीं बन सकती वह कभी भी पारिवार में सुख शान्ति, सुसन्तति, सौभाग्य और ऐश्वर्य की सृष्टि नहीं कर सकती।

अन्त में मैं यह अवश्य कहूँगी कि 'चिन्तनसुधा' के प्रायः सभी परिच्छेद हृदय की गहराई से निकला ऐसा सत्य है जिसे जितना परखो उतना ही सुन्दर एवं मंगल मय प्रतीत होता है।

दैनिक घटनाओं के प्रति मन की प्रतिक्रिया को इस प्रकार लेखन द्वारा स्थायित्व प्रदान करने का श्रीमती कृष्णा गुप्ता का यह प्रयास अत्यन्त प्रशंसनीय है। आपके

ये संगृहीत विचार पाठकों को लाभान्वित करेंगे ही चिन्तनशील विचारकों के लिए भी प्ररेणादायी सिद्ध होंगे।

ऐसा मेरा विश्वास है और मेरी माँ भारती से प्रार्थना है कि श्रीमती कृष्णा गुप्ता उत्तरोतर प्रौढ़ता अर्जित करती हुई साहित्य के क्षेत्र में अपना विशेष स्थान बनाए।

शकुन्तला सेठ

अपनी बात

'चिन्तन सुधा' पिछले कई वर्षों से डायरी के पन्नों पर लेख बद्ध होती रही, अपने साथ की हुई बातें धीरे धीरे पुस्तक बन गई। चिन्तन सुधा की भाषा बहुत सीधी सादी है इससे सब किसी की समझ में आ सकती है। स्वयं पढ़ती हूँ तो लगता है बहुत सी उपयोगी बातें हैं जो दूसरों के काम भी आ सकती हैं। अतः पाठकों के सामने रखने का दुःसाहस कर रही हूँ। वास्तव में मैंने अपने मन को सुस्थिर करने के लिए ही लिखा, अतः जब जो भाव आया टाँक दिया। अलग अलग विषय को अलग अलग विभागों में बाँटे बिना ज्यूँ का त्यूँ प्रस्तुत कर रही हूँ। इस पुस्तक की गलतियाँ तो मेरी अपनी हैं। जो अच्छा है वह सदविचार देने वाले भगवान की कृपा है। अच्छी संगति का प्रसाद है, अध्ययन, स्वाध्याय का परिणाम है ।

मेरी भाषा सम्बन्धी बहुत सी गलतियों को पुज्या बहिन सुश्री शकुन्तला सेठ जी ने सुधारा। उन को मैंने पुस्तक के विषय में अपनी राय देने की प्रार्थना की तो आद्योपान्त पढ़ने के पश्चात उन्होंने मुझे विशेष प्रोत्साहन दिया, जिससे मेरा उत्साह बढ़ गया । जितना श्रम उन्होंने किया उसके लिए धन्यवाद बहुत छोटा शब्द है । जीवन की प्रथम पाठशाला से ही मैं उन्हें भली भान्ति जोहती रही। तब से आज तक उन्हीं से बहुत कुछ सीखा, जो जीवन संवारने के काम आया, औरों को मेरी जीवन शैली कैसी लगी इसकी चिन्ता नहीं, जीवन ठीक दिशा में चला कि नहीं इसका अनुशीलन तो हर पग पर हो जाता है । यदि कोई निर्णय ठीक लगता है तो उससे हट जाना मुझे अच्छा नहीं लगता। बस इतनी सी दृढ़ता मैं ने पाई। और वही मेरा स्वभाव बन गया । यह पुस्तक कोई कथा कहानी तो है नहीं, मेरे अपने ही अन्तर की बहती धारा है । उस परम पिता से प्रार्थना करती हूँ कि पुस्तक की उपयोगिता सिद्ध हो।

विचारों की परिपक्वता निरन्तर चिन्तन और आन्तरिक मनन का परिणाम होता है। उसी से चरित्र गठन होता है। सब कुछ प्रत्यक्ष साक्षात्कार तो किन्हीं योगियों का ही होता है। साधक की साधना उसे पथ का अनुमान देती है जिससे वह साधना की असिधारा पर अपने आप को सन्तुलित करता है। मन तब कभी विचलित होने लगे तो विचार पुनः सम्भालने में सहायता करता है। इससे पुनः सुस्थिर होने में सक्षम हो जाता है। विचार नदी की धारा की तरह चलता है। लेखन, धारा में बहुत अनमोल मोतियों को पकड़ में रख लेने का बड़ा सुन्दर साधन है। क्यों कि जब कभी मन कमज़ोर होने लगे अपने इन मोतियों को पुनः अवलोकन करना मनुष्य को जल्दी सुस्थिर कर देता है । अपना लेखन ही संवल बन जाता है। इसलिए सब कुछ साक्षात्कार के आधार पर नहीं लिखा, मनन, अनुशीलन, अध्ययन और स्वयं अपना शिक्षक बनने के लिए भी लिखा। बचपन से आज तक, चांद सितारों से लेकर पाताल तक, अनगिणत प्रश्नों का तिलस्मी उत्तर मन को सन्तुष्ट नहीं करता। धरती पर मज़बूती से खड़े ऐसे उत्तर चाहिए जो नश्वर जीवन को अनश्वर से जोड़ते हैं तर्क सिद्ध प्रमाण सहित। किसी उत्तर की सही खोज ही आत्म विश्वास देती है। अन्धेरे में टटोल टटोल कर अनुमान लगाने से ऐसा नहीं हो सकता है। मेरी इस खोज में बहुत सी गलतियां हों, परन्तु अपने अन्तर को प्रकाश देने के लिए गलतियों का जानना और मिटाना ही हमारा प्रयत्न रहे तो हम अवश्य अपने आप को सुदृढ़ स्थिति में लाने में सफल होंगे। सब महान व्यक्तियों के चरणों में सादर नमन के साथ प्रस्तुत है मेरी विनम्र 'चिन्तन सुधा'।

कृष्णा गुप्ता

चिन्तन सुधा

(१)

दुःख और सुख की सृष्टि हम स्वयं ही करते हैं, पहले कल्पना में हम रेखाएं बनाते हैं, फिर उन्हें बाहर के परिवेश में आरोपित करते हैं अन्त में वह साकार हो उठती है। अपना सोचा हुआ संसार हमारे चर्म चक्षुयों के आगे प्रस्तुत हो जाता है।

(२)

जब किसी को एक साथ बहुत से लोग अकारण कोसने लगते हैं तो कई बार उस व्यक्ति का मस्तिष्क पलटा खा जाता है । व्यक्ति अन्ततः बदल जाता है उसकी बौद्धिक चेतना जाग उठती है और तब जीवन में अभूतपूर्व परिवर्तन आ जाते हैं ।

(३)

जब हम कुछ न करने योग्य करते हैं, न कहने योग्य कहते हैं तो हम उससे अनभिज्ञ नहीं होते तो भी अपने को दोषमुक्त करने के लिए दूसरों पर दोषारोपण करते हैं। यह मुष्य की कितनी धूर्त प्रकृति है। सत्य तो कभी न कभी सामने आ ही जाता है ।

(४)

निर्धनता से भी बड़ा पाप है निकम्मापन, निठल्लापन । ऐसे व्यक्ति जो इस भूमि पर केवल खाने और मल त्यागने ही को सब कुछ समझते हैं, कितने दयनीय हैं ।

(५)

किसी ऊँचे उद्देश्य के लिए लड़ने वाले व्यक्ति को गोली और गाली खाने के लिए तैयार रहना चाहिए । फूलों की बारी अक्सर उसकी नहीं, उसकी लाश की होती है ।

(६)

जो व्यक्ति अपने स्वार्थ और लालच को त्याग कर दूसरों की भलाई कि लिए सत्य भाषण स्पष्टतः करता है, उसे कितने ही पत्थर मारे जाऐं ' अंत' में वह अपने उद्देश्य की पवित्रा के कारण पूजनीय हो जाता है ।

(७)

प्रेम एक पवित्र धन है । रिश्तों की दिवारों से घिरा नेह का बन्धन दिवारों के भीतर टंगे हिंडोले की तरह है जो कभी इस पार कभी उस पार आता जाता है। हर सम्बन्ध के प्रति आस्था को प्रति क्षण उसे परखना और विश्वस्त होना पड़ता है । परन्तु ईश्वरीय प्रेम अनन्त आकाश में विहरते विहंग सा आकाश के किसी भी छोर पर रहे आकाश में ही रहता है। आकाश में समीपता या दूरी का कोई परिणाम नहीं होता। प्रेम का यही स्वरूप है जो सत्य और पवित्रा को पल पल जन्म देता है, जो विश्व को कुटुंब बना देता है।

(८)

नेहर और ससुराल की दो नदियां की बीच की दिवार है नारी। दोनों नदियों के जल का वेग अपने पर सहनकर दोनों नदियों की धारा का सन्तुलन बनाने के लिए नारी को कितंना संयमित कितना जागरूक, सहनशील होना पड़ता है। यह नारी ही जानती हैं।

(९)

राजनीति के अखाड़े में नेतागिरि के मल्लयूद्ध में लड़ने के पीछे घायल होती है जनता। सिंहासन मिलते ही इनकी

प्रतिद्वनिद्वता होती है जनता से। सिंहासन न मिलने पर प्रतिद्वन्द्विता सरकारी तंत्र से। यह लोग देश प्रेमी नहीं हैं यह अपने स्वार्थों के लिए लड़ने वाले सांड है ।

(१०)

जब हम आँखें मूंद कर किसी ध्यान में बैठते है तो शरीर के निश्चल बैठे रहने पर भी आंखों के आगे एक और दृष्टि खुल जाती है जिसमें गति होती है । उस गति में जिस व्यक्ति को जो अनुभव होता है उसकी व्यक्तता की छट–पटाहट कला और विज्ञान को जन्म देती है कला सौन्दर्य पक्ष है विज्ञान यथार्थ पक्ष । महत्व दोनों का समान है । कला के सौन्दर्य से अविभूत या विज्ञान के यथार्थ प्रयोगों से रोमांचित साधन बन जाता है और अपने अपने ढंग से अमूर्त को मूर्त बनाने की क्षमता रखता है ।

(११)

किसी फल या फूल के पेड़ को उसकी किस्म के बढिया पन लाने के लिए उसी फल या फूल की बढ़िया किस्म की गांठ लगाई जाती है । इसी प्रकार व्यक्ति में प्राकृतिक गुणों और संस्कारों को, मानसिक रूचियों को ध्यान में रख कर ही उस दिशा में व्यक्ति के व्यक्तित्वं में निखार लाया जाता है। प्रकृति के विरुद्ध लगाई गांठ का परिणाम लाखों में कोई एक ठीक बैठती है पर विकास और निखार रुक जाता है। व्यक्ति

जिन रूचियों और गुणों के बीच वर्तमान हो उन्हीं को परिष्कृत, सुसंस्कृत करने पर उन्नति स्वभाविक रूप में होने लगती है।

(१२)

कुछ राजनैतिक मोहरे होते हैं, कुछ उनके कंधों पर बन्दूक चलाने वाले, कुछ चमचें होते है कुछ चमचों के चमचे। परन्तु आम जनता कुछ नहीं होती, यद्यपि सारी राजनीति उन्हीं के सिरों के मोल पर खेली जाती है तथा हर संकट क़ी गोलियों के शिकार भी वही होते हैं।

(१३)

एक काँढी दीपक जलाती है स्वयं बुझ जाती है। दीपक जल चुका अब उसकी लौ से हजारों दीपक जलाओ, जलाते रहो। बलिदान और अमरता का यह शाश्वत नियम् है।

(१४)

आत्मविश्वास और मिथ्याभिमान में बहुत कम अंतर है। जब मिथ्याभिमान को आत्मविश्वास का भ्रम अपने में हो जाए तब मनुष्य घन–घोर गलतियाँ करता है, गिरता है, इतना कि उभरना कठिन हो जाए ।

(१५)

संवेदनशील ह्रदय से प्रादर्भूत काव्य उन भावों का प्रतिपादन कर सकता है, जो ह्रदयः को छू लेने वाले मानवीय मूलयों का चित्रण कर दें। शब्दाडम्बर में उलझ कर काव्य के ह्रदय को पाना कठिन है ।

(१६)

जिस दिन प्रभु यीशू क्रास पर शहीद हुए आज भी मानव की स्थिति वैसी ही है। न जाने कितने यीशूओं को आज भी यही संदेश प्राप्त होता रहता है कि वे मानव–कल्याण के लिए फांसी के फंदों को चूमने को मजबूर हैं।

(१७)

क्रोध को सहन कर पाना बहुत कठिन है परन्तु जो क्रोध को अपने में सहन कर लेता है वह बहुत सी बुराइयों से बच जाता है।

(१८)

अपने आप में सुख की पराकाष्ठा को सहना भी स्वामाविक नहीं, यद्यपि मनुष्य सदा सुख और आनन्द की तरफ आकृष्ट रहता है । इसलिए दूसरों के कष्ट को सहन करने के लिए, उनके लिए औषधमय बन कर सुख और दुःख का सन्तुलन बनाकर आन्तरिक अतिरेक की सहन करने की क्षमता संजोना है ।

(१६)

हित की बातें उसी व्यक्ति को कही जा सकती है जो उन्हें सुनने को तैयार हो । जो सुनने को तैयार ही नहीं वो नष्ट भी हो जाए तो उसे कुछ कहना व्यर्थ है ।

(२०)

बुरे व्यक्ति को उसकी बुराई बताने वाला बुरे व्यक्ति के लिए शत्रु बन जाता है ।

(२१)

चरित्र, ईमानदारी और सच्चाई के लिए जीने वाले व्यक्ति को ही संसार कसौटी पर कसता है । इसलिए इस मार्ग पर चले वाला तलवार की धार पर चलता है । बुरे व्यक्ति को कोई फर्क नहीं पड़ता वह तो एक क्षण में गिरगिट की तरह रंग बदल लेगा ।

(२२)

कुछ लोग हैं जिन्हें भगवान् ने आँखे दी है पर दृष्टि नहीं। कुछ के पास आँखें नहीं पर दृष्टि है ।

(२३)

ए मेरे प्यारे मन, तू नाम के चन्दन गन्धा फूल में इस तरह लोटनियां खा जैसे मस्त होकर घोड़ा मिट्टी में खाता है । तन, मन प्राणों में इसे भर दे, इसके आनन्द से ओतप्रोत हो जा, और अन्तः करण के द्वार पर चोट करता जा, करता जा। मन्त्रपूत जब तू वहाँ प्रवेश पाएगा तो चरम आनंद से भरपूर हो जाएगा।

(२४)

वैसे संसार में सब पदार्थ उपलब्ध हैं उसी प्रकार ब्रह्म भी उपलब्ध हो सकते हैं । ब्रह्म सर्वत्र सर्वदा ओतप्रोत हैं। शब्द के संघात से ब्रह्म की शक्ति के प्रमाणुओं को जाग्रत करके जब हम एकत्र कर लेते है तो वह शक्ति पुँज हमें अपने ही भीतर भरा हुआ अनुभव होने लगता है। फिर वह भीतर भरा हुआ बाहर भरा हुआ लगता है। तब हम उसके एकाकार सत्य से भरपूर हो जाते हैं ।

(२५)

शिवलिंग की प्रदक्षिणा में गंगा का उलंघन जैसे वर्जित है, उसी प्रकार माला जप में सुमेरू का उलघंन भी वर्जित है । पुराणों में हिरण्यमय, ज्योतिर्मय परमधाम की स्थिति की कल्पना सुमेरू पर्वत पर की गई है। मनुष्य की सारी कल्पना, साधना, इस समेरू की प्रदक्षिणा में निहित है । प्रदक्षिणा करते करते जिस समय यह प्राण हिरण्यमय हो उठेगें तब न समेरू रहेगाा न माला । रह जाएगा एक मात्र वह ज्योतिपुँज ।

(२६)

समेरू शिखर है माला का। ब्रह्मरन्ध्र शिखर है मनुष्य के शरीर का ब्रह्मरन्ध्र पार कर जाने वाला मोक्ष को प्राप्त कर लेता है । जब तक जीवन है ब्रह्मरन्ध्र को पार नहीं करना । सुमेरू भी पार नहीं करना। मोक्ष की प्राप्ति के समय दोनों का उलंघन हो जाएगा ।

(२७)

प्राणों की माला के मनके सुमेरू के गिर्द घूमते रहें । हर मनके की गति के साथ घूमता रहे मन्त्र का जाप । संसार के व्यापार चलते रहें जीवन मंत्रमय हो जाए और मन्त्र मोक्षमय ।

(२८)

मनन, मन में किसी विचार को बार–बार दोहराने, उस पर विचारने, उसे अन्तरात्मा तक पहुँचाने के परिणाम क़ो कहते हैं। मनन से ही वैज्ञानिकों ने बड़े बड़े अविष्कार किए। मनन से

ही मनुष्य ने बड़ी बड़ी सिद्धियां प्राप्त की, भगवान को प्राप्त किया ।

(२६)

हम चाहे किसी आचार्य के उपदेश सुने या स्वयं स्वाध्याय करें, मनन की आवश्यकता दोनो स्थितियों में है। मनन के लिए एकांत चाहिए, अपनी दिन चर्या मे हमें एकांत को भी उपलब्ध करना है। विद्वत जनों के पास भी हर समय भीड़ लगाए रखना ठीक नहीं। एकांत का अभाव हमें इतना बहिर्भुखी बना देता है कि फिर न हम अपने दुर्गुणों को जान पाते हैं, न सद्‌गुणो को आत्मा सात कर पाते हैं । मौनजप से हमें आत्मिक शक्ति और सद्‌बुद्धि प्राप्त होती है।

(३०)

जो पूर्ण तथा ठीक सटीक लगे उसे कर लेना चाहिए। निर्णय के क्षण सदा अनमोल होते हैं ।

(३१)

जन्म के पश्चात ज्यों ज्यों शिशु के नेत्र खुलते जाते हैं वह इस संसार को आश्चर्य से देखता है। मैं कहाँ हूँ, कैसा हूँ, क्यों हूँ, ऐसे विचारों का एक बातचक्र सा उसके चारों और चक्कर काटता है । भूख लगने पर मारे चिन्ता के रोता है । अपने को असहाय सोचकर छटपटाता है । अपने समक्ष आने वाली प्रत्येक वस्तु और प्राणी को देखने, समझने, परखने की बड़ी तीव्र जिज्ञासा उस के भीतर होती है। दुख–सुख को शीघ्र गति से ग्रहण करता है इसीलिए बचपन में हर बात को

समझने की अज्ञात शक्ति प्रबल होती है। बचपन में एक एक दिन में हम जितना सीख जाते हैं उतना बड़े होकर नहीं सीखते। अनुपात का पता इसलिए नहीं चलता क्योंकि बचपन में जों शिशुं सीखता है उसे हम पहले ही जानते हैं अपना जाना हुआ जब–जब दूसरे भी जान लेते हैं तो साधारण बात लगती है। यौवन में यह शक्ति प्रखर हो जाती है । वृद्धावस्था में जीवन भर में जो सीखा हुआ होता है अधिकांशतः उसी पर निर्भर रहा जाता है । बहुत कम लोग हैं जो वृद्धावस्था मे भी तीव्रतम् अनुभूति से नई संरचना को ग्रहण कर लें अतः मनुष्य अधिकांशतः वही बनता या होता है जो वह जन्म से लेकर बनता चला आ रहा है । बाद के परिवर्तन अस्थाई होते हैं । इसी से मनुष्य का निर्माण जन्मकाल से भी पहले गर्भावस्था में ही प्रारम्भ हो जाता है । बाद मे हम चाहे कितना ही किसी को कोसें, जो वह नहीं बन पाया, वो हमारी गलती और कमजोरी की वजह से ही हुआ। ऐसा ही जानना ठीक है।

(३२)

अधिकांश लोग वास्तविकता को कम जानते हैं जो जानतें है वो ठीक से प्रस्तुत नहीं कर पाते । जो कर पाते हैं, कोई आवश्यक नहीं कि उन पर विश्वासं किया जा सके, जो विश्वास प्राप्त कर सकते हैं, और कर्म के प्रति सत्यनिष्ठा से अभिभूत हैं वही नेतृत्व के सच्चे परिचायक हैं । सत्य के प्रति निष्ठा तथा

कर्म के प्रति आस्था होते हुए भी उसके प्रतिपादन की क्षमता अति आवश्यक है ।

(३३)

कोई मुझे चरित्रहीन समझता है या चरित्रवान् समझता है, इसकी चिन्ता करने से कोई लाभ नहीं क्योंकि लोग दूसरों को अपनी इच्छा और अपनी दृष्टि से देखते हैं । मैं अपने को चरित्रवान् बना सकूँ अपने आगे स्वयं निर्दोष और पवित्र बन सकूँ बस यह प्रसन्नता ही मुझे आत्मसंबल दे सकती है ।

(३४)

तपश्चर्या के लिए बोल बोल कर, क्रोध कर करके दूसरों को कोसने की आवश्यकता नहीं है। मौनहो कर प्रभु के नाम सिमरण में विलीन हो जाने पर सारा कलुष धुल जाता है । अतः यही तपश्चर्या सबसे उत्तम है ।

(३५)

इस संसार में यदि पूर्णतया अपनी ही इच्छा–नुसार जीवन व्यतीत करना ठीक होता तो कोई भी प्रकार की शासन पद्धति चलाने की आवश्यकता नहीं थी । एक सीमा तक हम अपनी इच्छा को सर्वोपरि रख सकते हैं । शेष हमारा सबका जीवन परिवार से, समाज से, अपने शहर या गांव से, देश से, धर्म से, राजनीति से सम्बन्धित रहता है ।

इसलिए हम जो करना चाहते हैं उसमें दूसरों की अनुमति की प्रसन्नता की परमावश्यकता रहती है । जब तक हम शक्तिशाली है । इस सामुहिकता का महत्त्व नहीं समझ सकते । परन्तु जैसे

ही शक्ति क्षीण होने लगती है निर्बलता, निर्धनता, रोग, अपराध, दण्ड, दैविक, दैहिक अध्यात्मिक आपदाएँ आ घेरती हैं, तब हम व्यक्तिवाद से समाजबाद की तरफ लपकते हैं । अच्छा है इस सामुहिकता में जीवन जीने की सड़क हम पहले से ही तय कर लें । जब दूसरों को आवश्यकता हो हम आगे बड़े। जब हमें आवश्यकता हो दूसरों आगे बड़े ।

(३६)

जब हमारे विचार शुद्ध, पवित्र और युक्तियुक्त हैं तथा हम अपने विचारों के अनूकूल जीने में भी सफल हैं तो हमने एक उत्तम जीवन जिया है। यदि विचार अच्छे हैं पर व्यवहारिक जीवन में उन्हें नहीं उतार पाए तो हम सफल नहीं कायर हैं । यदि विचार भी अच्छे नहीं और जीवन भी अच्छा नहीं तो हम अपने ही बनाए नरक में जीते हैं।

(३७)

साधारणतया किसी भी व्यक्ति के मर जाने से इस दुनिया मे कोई अंतर नहीं आता । नदी का पानी आगे चलता है तथा उसके स्थान को पीछे से और पानी आ कर भर देता है । परन्तु जब कोई अपना इस संसार से विदा लेता है तो ऐसे लगता है जैसे इस बहने वाली नदी का उद्‌गम स्रोत ही सूख गया है।

(३८)

संसारिकता में व्यस्त रहते हर व्यक्ति के लिऐ अध्यात्मिकता का विषय अलूनी सिल जैसा ही नीरस, निस्वाद

है, जिसे थोड़ा स्वाद आने लगे, जरूरी नहीं कि उसे समझ आए, जिसे समझ आने लगे जरूरी नहीं कि उसे स्मरण रहे, जिसे स्मरण रहने लगे जरूरी नहीं कि वह उसे प्रस्तुत कर सके, जो प्रस्तुत कर सके जरूरी नहीं वह स्वयं निष्णात हो, स्वयं निष्णात होने के लिए तप की आवश्यकता है, तप में निरंतर अभ्यास करके जो सबसे आगे बढ़ता है जरूरी नहीं वह सरस्वती का वाक्पुत्र होकर दूसरों को समझा सके । दूसरों को समझा भी सके तो जरूरी नहीं वह साक्षात्कार कर चुका हो। जो भी हो इस मार्ग पर चलने के लिए पथिक बन कर आगे बढ़ता रहता है उसे निराश होने की क्या आवश्यकता है । यह आत्मा का दुल्हा भगवान रूपी दुल्हन को प्राप्त कर ले तो शेष सब स्वंयमेव ही प्रकट हो जाता है। इस लिए यह बड़ी कृपा की बात है कि संसार की चलती चक्की में ही प्रवृति की सुधि बाला प्रभु नाम की मिठास से सारा भोग मधुर बना कर उसमें सराबोर जाए ।

(३६)

सुख की इच्छा दूसरों से ही की जाती है, जिससे दूसरें जब हमारी इच्छानुसार न चले हम गुस्से से लाल पीले होने लगते हैं । जब कि हमारे से दूसरे भी वैसी ही अपेक्षाएं करें तो हम उन्हें दे पाऐं या नहीं, यह हम नहीं सोचते, इसलिए हमारे दुखों का कोई अंत नहीं । न यह दुनिया हमारी इच्छाओं से चलेगी न हम सुखी होगें, न क्रोध त्यागे बिना शान्ति प्राप्त कर सकेगें ।

(४०)

अपनत्व के दो रंग "वो हमारे अपने हैं, उनका सब कुछ अपना है।" "वे हमारे हैं, हमारा सब कुछ उनका है।"

(४१)

गाली सुन कर चुप रहना, सहनशीलता। गाली सुना–सुना कर और चिलाना, ढीठपना। सच कहा है सोए को तो जगाऐं पर जगे (समझे) हुए को क्या जगाऐं ।

(४२)

कुछ लोग हैं, जो फूल की पांखुड़ी की चोट से घायल हुए रहते हैं। कुछ लोग हैं, जो शूली की शय्‌या पर ही जिन्दगी गुज़ार देते हैं ।

(४३)

कोई भी पार्टी, वाद, संस्था या सम्प्रदाय कितने ही आदर्शों पर स्थापित हो, पारस्परिक विचार संगम के बजाए जब व्यवहारिक प्रतिद्वन्द्विता आ जाती है तब आदर्श धरे के धरे रह जाते हैं और सस्थाऐं छिन्न भिन्न हो जाती हैं, परिवार कट जाते हैं, देश बंट जाते हैं टुकड़ों में ।

(४४)

कोई कितनी भी शहनाई क्यों न बजाए जब मन की शहनाई न बजे बाहर से बजने वाली शहनाई किस अर्थ।

(४५)

बचाव का बढ़िया ढंग आक्रमण है जबतक दो शत्रु देश आपस में लड़ते हैं। परिवारों में यह मनोवृत्ति कुटिलता में गिनी जाती है ।

(४६)

साहसी व्यक्ति अच्छा हो सकता है लेकिन बुरा भी, और बुरा या अच्छा साहसी हो सकता है और कायर भी।

(४७)

भाव होंगे तो भाषा तलाश लेगें । भाव न हो तो भाषा के होने पर भी कविता नहीं बन सकती ।

(४८)

परीक्षक परीक्षार्थी की परीक्षा जब यह सोच कर लेता है कि देखें इसे क्या नहीं आता तो वह बहुत कम परीक्षार्थियों को पास कर पाता है। पर यदि वह इस दृष्टिकोण से परीक्षा ले कि देखें इसे क्या क्या आता है तो अवश्य उसे कहीं न कहीं उपयुक्त पा लेता है ।

(४९)

ए मन, तू ईर्ष्या के अवगुण से मुक्त रहो बस, संसार के आधे कष्ट तो इसी से समाप्त हो जाऐंगे ।

(५०)

दहलीज के भीतर का संसार भी कभी–कभी अपना नहीं लगता । पर मनुष्य की व्यापकता लोकप्रियता के रूप में

मुखरित हो उठती है, जब दहलीज के बाहर का संसार उसका अपना हो उठता है ।

(५१)

घेरे तोड़ कर बाहर आने वालों को घेरों में फिर फँसाने का प्रयास किया जाता है, परन्तु जो घेरों में रहकर घेरों के फैलाव को बढ़ा लेते हैं उनका संसार छोटा नहीं होता।

(५२)

काव्य के क्षेत्र में कवि की योग्यता डिगरियों से नहीं आंकी जाती, कवि की क्षमता तो उसकी भाव प्रवणता, प्रांजलता और अनुभूति की तीव्रता पर निर्भर करती है ।

(५३)

अजीब बात है, कई लोग लेखनी से आग के अंगारे बरसाते हैं, साक्षात्कार करो तो शीतल जल की फुहार छिटकाते हैं। कई लोग काव्य में करूणा की धार छोड़ते है और वास्तविक स्वभाव का परिचय जब मिलता है तो बड़ी निराशा होती है बात बात पर क्रोधित हो गालियां बकते देख कर उन्हें।

(५४)

प्रभु के दरबार में हर व्यक्ति के अपने अनुभव परम गोपनीय, परम व्यक्तिगत होते हैं जैसे पति पत्नी के । इन अनुभवों को अनुभव करने का आनन्द दूसरों को सुना देने से उतना मधुकर

नहीं रहता। साधक को मौन ही रहना चाहिए, प्रचार की क्या आवश्यकता है ।

(५५)

हमें ध्यान रहे कि हम किसी को बेवकूफ न बनाएं परन्तु हमें यह भी ध्यान रहे कि कोई हमें बेवकूफ न बनाए ।

(५६)

जीवन एक खुली पुस्तक है। हर पृष्ट स्पष्ट प्रांजल और उज्ज्वल हो तो जीवन में शांन्ति का बहुत बड़ा भाग हमें प्राप्त हो जाता है। यह अपने आप में एक बहुत बड़ी उपलब्धि है।

(५७)

बिना पुरूषार्थ किए, जो लोग खाने के लिए इधर-उधर मुँह मारते फिरते हैं, पीठ पीछे उनकी कोई शोभा नहीं होती।

(५८)

भाग्य का निर्धन तो दयनीय है ही परन्तु जो पुरूषार्थ का निर्धन है उसे क्या कहे ?

(५९)

अपने ही ह्रदय में प्रेम के अंकुर न फूटे हों तो भला दूसरों से सिवाय नफरत के हमें क्या प्राप्त हो सकता है ?

(६०)

नारी, जो तप त्याग और सेवा की मूर्ति नही बन सकती वह कभी परिवार में सुख, शान्ति, सुसन्तति, सौभाग्य और ऐश्वर्य

की सृष्टि नहीं कर सकती। नारी जागृति के नाम पर जो परम स्वार्थ परता, घमण्ड और धन लोलुपता का प्रचार हो गया है वह नारी को पूजनिया के सिहांसन से खींच नीचे ले आया है।

(६१)

जब किसी परिवार में नारी की स्थापना की जाती है तो उससे बड़ी अपेक्षाएं की जाती हैं। क्योंकि परिवार का भावी जीवन और दर्शन उस पर निर्भर करने वाला होता है। यदि वह गृह कार्य में दक्ष, परिवार की एकता बनाए रखने में सुविज्ञ, न्याय बुद्धि रखने वाली, समान भोजन परोसने वाली, दूसरों के सुख के लिए अपना सुख त्याग देने वाली, पति के आगे न बोलने वाली और सबकी शिकायतों का निवारण करने वाली होगी जो परिवार का भविष्य उज्ज्वल होगा। ऐसे परिवार में जो नए शिशु जन्म लेंगे वो स्वस्थ शरीर, स्वस्थ मन तथा सबको प्रिय लगने वाले होंगे ।

(६२)

व्यक्ति शत्रु को अपने सामने रखना चाहता है कि उसकी बुराइयाँ देख सके। शत्रुता साधने के कारणों में वृद्धि कर सके। इस तरह वह अपने को निर्दोष सिद्ध करने की भी चेष्टा करता है ।

(६३)

बहुत कम पति अपनी पत्नि क़ी इज्जत कर पाते हैं परन्तु बहुत कम बच्चे माँ से अधिक पिता को प्यार कर पाते हैं।

(६४)

अपने सुख और खानपान की परवाह न करके जो नारी पति और परिवार के प्रति समर्पित हो, घर के लोग अधिक देर उसकी उपेक्षा नहीं कर सकते ।

(६५)

समाज का सुधार अपनी चारदिवारी के भीतर से ही शुरू कर लें तो समाज अपने आप सुधर जाता है । क्योंकि हर इकाई समाज की है

(६६)

परस्परिक, सदभावना, प्रेम, परदुख कातरता और सच्चाई के अभाव में धन दौलत, आराम, ऐश्वर्य न तो शान्ति दे सकता है न चिंरजीवी सुख/अलबता मनुष्य को संशयशील, लालची, झगड़ालु और कामुक ज़रूर बना देते हैं ।

(६७)

बड़ी अच्छी कविता रची तो क्या हुआ, सहित्य रचा तो क्या हुआ, पूजा पाठ में घंटो माथा रगड़ा तो क्या हुआ, बड़े बूढ़ों का आर्शीवाद ही नहीं प्राप्त हुआ और बच्चों का मस्तक श्रद्धा से न झुका तो अवश्य कहीं कुछ गलत है । उस गलत को सुधारने से ही सार्थकता प्राप्त हो सकती है ।

(६८)

मैं बहुत अनमोल हूँ, परन्तु जो मुझ से अनमोल है उस सत्य के लिए यदि में मिट जाऊँ तो वह सत्य मुझे और भी अनमोल बना सकता है। मैं नहीं मिट सकता, मैं तो विराट में मिल कर विराट हो जाता है ।

(६६)

धर्म को इतना नाजुक बना दिया जाए कि वह काँच की तरह टूटने वाला बन जाए, तो फिर आस्था का जीवन में क्या महत्व है ? हर व्यक्ति का धर्म उसकी आस्था का पुंज है। आस्था दृढ़ है-जो धर्म छूने से या दूसरे के साथ बैठ कर खाने पीने से कभी नष्ट नहीं होता।

(७१)

अच्छाई और बुराई का विवेक जब आए तभी उस बुराई को छोड़ दें, तो कम से कम भविष्य में उस बुराई से होने वाले नुक्सान से तो हम बच जाते हैं ।

(७२)

हम किसी की जात पात न जानते हों, उसका लौकिक जीवन सात्विक हो, तो हमें उसके साथ खाने, पीने, उठने, बैठने, में धृणा नहीं होनी चाहिए, न ही धर्म के नष्ट होने का गम सताना चाहिए। अतः जात नहीं मनुष्य की तामसिक या सात्विक प्रकृति और रहने सहने का ढंग महत्त्वपूर्ण है । सात्विकता आते ही जाति की नीचता समाप्त हो जाती है।

(७३)

मन की चंचलता के कारण मनुष्य की अध्यात्मिक स्थिति में अंतर बार बार आ जाता है । कभी तो मन इतना सात्विक, स्थिर शान्त हो जाता है जैसे ज्योतिपुँज शिवलिंग हो कभी इतना अशांत, चंचल, तामसिक हो जाता है जैसे पारे का कण।

(७४)

मनुष्य का अपना दृष्टिकोण ही उसकी दार्शनिकता बनाता है । ईश्वर के प्रति प्रणिपात होने से शिवलिंग ज्योतिपुँज परमात्मा के प्रकाश के रूप में दिखता है और कामुक व्यक्ति को उसमें योनि और लिंग के दर्शन होते हैं ।

(७५)

जब कोई कलाकार किसी कृति का सृजन करता है तो वह उस को सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण सौन्दर्य से अभिमन्त्रित कर देने मे तन्मय हो जाता है। सौन्दर्य के प्रेम की पराकाष्ठा का स्वरूप उसके भीतर जिस रूप को प्रकाशित कर दे । वह उसका आराध्य बन जाता है ।

(७६)

हृदय की तड़प व्यक्ति में कवि पैदा कर देती है । कवि अपनी कृति को अपनी पूर्ण तन्मयता से जन्म देता है परन्तु तुरन्त बाद यह महसूस करता है कि बांत अभी पूरी तरह नहीं कही गई, इसी से लगातार कविताओं के कुँज में ही विहार करता रहता है। एक ही सत्य को कई तरह से प्रति पादित करने में तन्मय ।

(७७)

अन्न अपने घर से खाकर दूसरों की सेवा करने वाला सज्जन, दूसरों का अन्न खाकर दूसरों की सेवा करने वाला सेवक, दूसरों का अन्न खाकर अपनी सेवा करने वाला भिखारी, दूसरों का अन्न खाकर दूसरों का बुरा करने वाला दुष्ट, दूसरों का या अपना अन्न

खाकर अपने का पतित करने वाला पापी होता है ।

(७८)

बिना जरूरत अपनी शेखी बघारने के लिए जो झूठ बोले जाते हैं, झूठ बोलने वाले को हंसी का पात्र भी बना देते हैं, क्योंकि झूठ का पर्दा कभी न कभी तो फाश होता ही है।

(७६)

अपने सुधार और उन्नति की तमन्ना जहां कभी नहीं मरती वहाँ सफलता द्वार पर प्रतीक्षारतः होती है ।

(८०)

स्वतः प्रवुद्ध भावों में जितना बल और प्रवाह होता है उतना सप्रयास रचे काव्य में नहीं होता ।

(८१)

तलवार का धनी कलम के धनी का ऋणी है क्यांकि उसकी वीरता को इसकी कलम ही धनी उसे बना देती है ।

(८२)

कोई शुभ विचार मन में आए तो उसे कर डालिए । बाद में कई सलाहकार और कई विधि निशेध विघ्न उत्पन्न कर देते हैं।

(८३)

कानून बनाने वाला भी जानता है कि लोग इसे भंग करेंगे और फिर गीता और कुरान की कसम खाकर 'भंग नहीं करेंगे' का झूठ बोलेंगे। फिर भी कानून बना रहता है

भंग होता रहता है, कसम खाई जाती रहती है, झूठ कायम रहता है।

(८४)

परिवार में अत्यन्त कठोरता का शासन बच्चों का मानसिक, बौद्धिक विकास तो रोकता ही है, झूठ बोलने और चोरी–चोरी अपने मन चाहे काम करने की आदतें भी विरासत में दे देता है बच्चों का माता पिता पर इतना विश्वास और उन से इतनी मित्रता होनी चाहिए कि उन्हें उनसे पूछे बिना कुछ करने की इच्छा ही न होवे। चोरी करने का इरादा ही न जन्में।

(८५)

जीवन में जिन कठोरताओं का पालन हमें करना पड़ता है, यदि उन्हें इतना नैसर्गिक बना दिया जाए कि वे स्वभाव का अंग बन सके तो उनके प्रति अनिच्छा या भय लोप हो जाता है। फिर उनका पालन करना कठिन नहीं रहता।

(८६)

हर व्यक्ति में गुण भी हैं, दोष भी हैं। सामूहिकता में रहने के लिए एक दूसरे के गुणों की तरफ ध्यान रहे तो मित्रता बनी रहती है। थोड़े बहुत दोष हमें एक दूसरे के सहन कर लेने चाहिए, ताकि अनावश्यक कड़वाहट से हम बच जाएं और प्रेम भाव बना रहे।

(८७)

मन की डोर शरीर से बांध लें, तो यह शैतान है और मन की डोर भगवान से बांध लें, तो यह भगवान है। जिससे डोर बंधी है यह उसी की भाषा बोलता है, उसी में विहार करता है। उसी को अपने में जीवित रखता है।

(८८)

'नारी और पुरुष को एक दूसरे की ओर आकर्षित कर के एक डोर में बांधने वाली वासनाएं हैं।' परन्तु यह आधार बड़ा कच्चा और भ्रामक है। जो आत्मिक बंधन का आकर्षण है उसमें विषय वासनाओं का कोई प्रयोजन नहीं। विषय न रहे तब भी प्रेम रहेगा, निष्ठा रहेगी।

(८९)

किसी भी मां को अपनी संतान को सुसंस्कृत बनाने के लिए अपने जीवन का बलिदान देना पड़ता है। यदि माता पिता ने निश्च्छल प्रेम दे कर संतान को संतुष्ट नहीं किया, तो आने वाले कल में यह सोचना कि वह बुढ़ापे की लाठी बनेगी, व्यर्थ है। यदि कोई संतान माता पिता की आज्ञाकारी रहे तो उसे सतयुगी कहा जाएगा ।

(९०)

क्रोध में पागल व्यक्ति अनर्गल वक्ता होता है । बुरा मान कर 'जो सटीक है उसे करना छोड़ दे' तो किसका कल्याण होगा भला ?

(६१)

बहुत सुस्वादु भोजन बना हो लेकिन अपनी रुचि न हो तो वह भोजन भी अच्छा नहीं लगता है इसमें बनाने वाला का क्या दोष।

(६२)

नारी स्वतंत्रता की आवाज़ ने पुरुष को ऐसा बना दिया है कि वह हर कदम पर अपनी पत्नी के साथ यह तकाज़ा करने लगा है कि वह उसके प्रति वफादार है कि नहीं, और रोज़ वफादारी का नया सबूत चाहिए, रोज़ नया रोमांस चाहिए। 'जिंदगी में कुछ और भी करने को है।' पुरुष ने यह सोचना ही बंद कर दिया है। जिससे नारी भी अपने दायित्व की तरफ काफी गढ़बढ़ा गई है ।

(६३)

जीवन का हर क्षण मृत्यु की आशंका से आंतकित है इस आतंक से त्राण पाने के लिए हर कोई अपनी प्रवृति को इधर उधर लगाने के प्रयत्न में रहता है । कोई संगीत में, कोई नृत्य में, कोई कला में, कोई शराब तथा व्यभिचार में, कोई काम काज में, कोई मद्य पान में। परन्तु जो प्रभु के ध्यान में मग्न हो जाता है, वह मृत्यु के सामने आ जाने पर भी आतंकित नहीं होता।

(६४)

मृत्यु का क्षण बिना सूचना अनायास आ जाता है, गुजर जाता है परन्तुं मृत्यु की याद का हर पल कितना बोझिल होता है।

(६५)

पुरुष ही नारी को भ्रष्ट करता है, पुरुष ही नारी के भ्रष्ट होने का शक करता है। जहां नारी स्वयं बदचलन हो, वहां नारी पर शक का कारण, उसका दोष है। पर जहां पुरुष बलात्कार से शील भंग करे वहां पुरुष को ही कठोर से कठोर दंड मिलना चाहिए।

(६६)

अधिकतर स्त्री एक पति को प्राप्त कर के, अपना मन प्राण सब कुछ उसी के आगे समर्पित कर देने की भावना से अभिभूत होती है। परन्तु पुरुष की चंचलता, अत्याधिक कामुकता से दूसरी स्त्रियों पर आकृष्ट होने की आदत तथा अपनी स्त्री से ऊब जाने की प्रवृत्ति ने आज की नारी की पतिव्रता होने की निष्ठा को ताक पर रख दिया है। इसलिंये समानधिकार का झंडा लेकर स्त्री ने अपनी तलवार तान ली है।

(६७)

पैसा—पैसा—पैसा ! पैसे ने प्रेम की प्रतिष्ठा को मटियामेल कर दिया है। पति, पन्ति, पिता, पुत्र या पुत्री, मां बेटा या बेटी, बाहिन भाई कोई रिश्ता नहीं रहा बस एक ही रिश्ता रह गया है "पैसा"। और पैसे ने प्रसव की हैं सारी दुष्ट प्रवृत्तियॉं।

(६८)

कभी ऐसे साहूकार थे जो अकाल पडते ही अपने अन्न के भंडार खोल देते थे। आज ऐसे साहूकार हैं जो अकाल बुलाने के लिए अपने उत्पादन को (अन्डर ग्राउंड) छुपा कर दूसरों की जेबें काट लेते हैं।

(९९)

जिस व्यक्ति में सारी प्रजा को एक झंडे के नीचे खड़े करने की क्षमता हो, वही देश का शासन चला सकता है। ऐसी गाड़ी जिसका रुख चारों तरफ हो, घोड़े चारों तरफ बंधे हों किधर भी नहीं चल पाता। बल्कि रथ को अपनी तरफ खींच-कर रथ ही तोड़ देते हैं घोड़े। वह देश बड़ा सौभाग्यशाली होता है, जहां के लोगों को ठीक सटीक नेता मिले।

(१००)

वही जो कल साधारण आय में जीवन बिताते थे और अमीरों की निंदा करते थे, जब अमीर हो जाते हैं तो उनका अपना मस्तिष्क भी तेरहवें आसमान पर कब चढ़ जाता है पता भी नहीं चलता। अतः जब ईश्वर से प्रार्थना करें, तो यही कहें कि और कुछ न दे, हमारा सिर हमारी गर्दन पर ही रहने देना ताकि हम इंसान को इंसान ही समझें और मनुष्य समझकर ही व्यवहार करें।

(१०१)

मनुष्य की कामुकता की शारीरिक भूख इतनी नहीं होती जितनी वह बना लेता है। यह रोटी खाने, पानी पीने जैसी नहीं होती है, यह तो आग में ईन्धन डालने जैसी होती है। ईन्धन मत डालिए, यह आग स्वतः शांत हो जाएगी। मन और शरीर को दूसरे कामों में व्यस्त रखिए, यह भूख कहां गई पता ही नहीं चलेगा। पर आज न जाने कैसा रिवाज हो गया है। भूख न हो तो उसे जबरदस्ती लाया जाता है ऐसे साधन अपनाए जाते हैं,

कि भूख और लगे, और लगे। जैसे ईन्धन जलकर राख हो जाता है वैसे ही यह शरीर भी कामुकता में भस्म हो जाता है। बिमारियां आ जाती हैं पर इसकी प्यास नहीं बुझ पाती। व्यक्ति खत्म हो जाता है, पर भूख ज्यों कि त्यों बनी रहती है।

(१०२)

प्रेम की भावना और विषय उपभोग का इतना ही संबन्ध है कि जहां हम जानते है कि हम पति पत्नि हैं, वहां हम प्रेम की पराकाष्ठा को विषय उपभोग तक जाते देते हैं। परन्तु विषय भोग प्रेम की पराकाष्ठा है, यह गलत हैं। यहां विषय वासनाओं का अभाव हो पर प्रेम अड़िग हो वही सच्चा प्रेम है और सफल प्रेम हैं। विषयों के भोग के लिए प्रेम तो निम्नतम भावना है।

(१०३)

जो स्त्री पुरुष को प्राप्त हो जाती है, उसमें कितने ही गुण हों वह उसकी कदर नहीं कर पाता। दूसरी स्त्रियों पर चाहे वह कुँवारी हों या विवाहित, लालायित रहता है। चाहे वह उसकी अपनी पत्नि से कितनी ही निकृष्ट हो। पुरुष की यह प्रवुत्ति ही उसके पतन का मुख्य कारण है।

(१०४)

कामुकता वश पुरुष नारी का दास बन जाता है। जो नारी पुरुष को अपना दास बना लेती है, वह बड़े से बड़े बुद्धिमान को भी चक्करगिन्नी खिला देती है और गलत से गलत काम करवा लेती है।

(१०५)

जब तक पैसे मेरे लिए हैं, तब तक मैं स्वामी और पैसा दास होता है। जब मैं पैसे के लिए हो जाता हूँ तब मैं दास और पैसा

स्वामी हो जाता है। पैसा स्वामी होते ही मुझे शैतान बना देगा। और मेरी इन्सानियत कूच कर जाएगी।

(१०६)

स्वार्थी मनुष्य दूसरों को इस प्रकार निचोड़ लेना चाहता है जैसे कोहलू तिल से तेल पेर लेता है जो जरा पिरने से इन्कार करे तो क्रोधित होकर स्वार्थी व्यक्ति अपना भी खून सुखा लेता है और पिरने वाले को तो सुखाता ही है।

(१०७)

क्रोध जब दूसरों की भलाई और परमार्थ के लिए किया जाता है, तब वह सात्विक क्रोध होता है। पर जब क्रोध, क्रोध के लिए किया जाता है, तब वह तामसिकता से दूषित होता है। और फिर उससे किसी का क्या भला हो सकता है।

(१०८)

पति–पत्नि का प्रेम एक निष्ठा है, एक कसौटी है। बाकी सबके प्रति प्रेम एक सद्भावना है, जिसका विस्तार असीम हो सकता है। ईश्वर के प्रति प्रेम भक्ति है जो व्यक्ति को महान बना सकने का मार्ग भी है, निष्ठा का आलम्बन है और प्राणी मात्र के प्रति सद्भावना का स्रोत है।

(१०६)

हमारे मन में किसी को धोखा देने की, किसी को हानि पहुँचाने की इच्छा न हो, यही हमारे लिए करणीय है। परन्तु हमारी बुद्धि ऐसी जागरूक और आंखें खुली हों, कि कोई हमारा अनिष्ट करे या हमें धोखा दे, इसका हमे भान हो सके, और हम हर बुराई से बच निकलें।

(११०)

दुष्ट व्यक्ति साधुता का चोला पहन कर जब किसी संस्था में घुसता है तो वह उसे तिलचटों और दीमकों की फौज की तरह अकेला ही अन्दर ही अन्दर से खा जाता है। और एक दिन इमारत इस तरह भुरभुरा के गिर जाती है कि किसी को संभलने का मौका ही नहीं मिलता। उसकी दुष्टता का आभास भी मुश्किल से मिलता है।

(१११)

परायों की दुष्टता तो मनुष्य फिर भी सहन कर लेता है, यह सोच कर कि परायों को उससे क्या दर्द। पर अपनों की दुष्टता से व्यक्ति अंदर बाहर से टूट जाता है क्योंकि अपनों के प्रति संबन्धों के भ्रम को वह बुने रहता है।

(११२)

दूसरों से निपटने के लिए भले ही तलवार उठा लें पर अपनों से निपटने के लिए तलवार नहीं, नीति का अस्त्र उठाना पड़ता है। नीति वह अस्त्र है जो चोट करके भी बिगडने से बचा सकती है।

(११३)

पति किसी दूसरी स्त्री के प्रेम में फंस जाए तो उस पर सीधा वार करने की बेवकूफी मत करो, योग्यता इसी में है कि

ऐसी परिस्थिति बना दो, जिससे वह स्वयं ही अपनी गलती महसूस करके उस जाल से स्वयं ही निकल भागे और तौबा करले।

(११४)

वह पुरूष नहीं उल्लू है जो अपनी समर्पित पत्नि के भोलेपन की कदर न कर सके, और बदचलन औरतों के शिकजें में अपने को फंसा ले।

(११५)

उस स्त्री को क्या कहें जो अपने पति की, बच्चों के जीवन की, और घर की भी परवाह न करे, तथा दर दर की खाक छानती फिरे और घायल सिंहनी सी काटती फिरे।

(११६)

नारी सुशिक्षित हो तो जरूरी नहीं वह अपनी योग्यता का प्रयोग नौकरी करने या पैसा कमाने में ही करें। सुशिक्षित होकर ही वह अपनी संतान को उत्तम शिक्षा दे सकती है। अच्छी संतानें देश के उज्ज्वल भविष्य के लिए आवश्यक हैं।

(११७)

जब हम एक व्यक्ति को सच्चा इंसान बना सकें तो हमें यह सोचना चाहिए कि हमने एक राष्ट्र को बनाया है। एक सच्चा इंसान एक राष्ट्र का अग्रदूत होता है।

(११८)

सबसे पिछली बैंच पर बैठा हुआ जब यह निश्चय कर लें कि मुझे सबसे पहले वाली बेंच पर बैठना है, तो वह अवश्य एक दिन सब से पहले बेंच पर आ विराजेगा। परन्तु सबसे पहली पंक्ति वाला अपनी सीट रिजर्व समझकर निश्चिंत ही रहे तो कोई बड़ी बात नहीं कि रिजर्व की हुई सीट भी छिन जाए।

(११९)

जो दूसरों को साथ लेकर आगे बढ़ता है, वह विपत्तिओं में अकेला नहीं होता। जो दूसरों को धकेलकर आगे बढ़ता है, उसे धकेलने के लिए दूसरे भी दंड पेल लेते हैं।

(१२०)

एकांत में रहने वाला या तो महान चिंतक बन जाता है या महान मूर्ख। संसार को अच्छी तरह से जान कर प्राप्त किया एकांत चिन्तन का वरदान देता है। संसार को न जानकर एकांत सेवन कूप मंडूक होने का श्राप बन जाता है।

(१२१)

जिस नाविक ने लहरों का बहाव देखा है वह गहरे से गहरे समुद्र में बड़े से बड़ा जहाज बेखटके निकाल कर ले जाता है। जो बहाव नहीं जानता वह अपनी नाव किसी भी चट्टान से टकराकर चकनाचूर कर लेता है।

(१२२)

आज दुनियां एक ऐसी जगह बन गई है, जहां बहुत बातें करने वाले गुण वालों पर हावी हो गए हैं। परिश्रम दूसरों से करवाते हैं, फल खुद खाते हैं।

(१२३)

सब आगे बढ़ रहे हैं, तुम भी बढ़ो। खड़े खड़े छलांग लगाने से डरते रहोगे तो तैरना कभी न सीख सकोगे। जिन्हें नालायक समझते हो, वह भी बाजी जीत जाएंगे।

(१२४)

मन स्थिर हो जाए तो बाहर के शोर से इतना अंतर नहीं पड़ता। मन ही स्थिर न हो तो भला कोई भी कार्य, चाहे कितने भी एकांत क्यों न हों, कैसे हो सकता है।

(१२५)

यदि आप मां हैं तो बच्चों पर प्रेम बरसायें, दया नहीं। उन्हें उपलों की तरह थाप–थाप कर मत रखो। न ही उन्हें बार–बार खतरों से डराओ। ऐसे बच्चे बड़े होकर किस काम आएंगे? उन्हें जिंदगी में आने वाले खतरों के लिए तैयार करो। फिर वह कम से कम दया के पात्र न होंगे।

(१२६)

जिससे प्रेम हो उसके अवगुण दृष्टि गोचर नहीं होते, यह बात पूर्ण सत्य नहीं है। पूर्ण सत्य हो तो विवाह होते ही प्रेम विवाह रचाने वालों में दरारें क्यों आएं? इसको इस तरह कहो,

कि जिससे प्रेम करो, उसके अवगुणों के कारण भी, उसका त्याग करना वांछनीय नहीं है।

(१२७)

जिस मां ने आंचल में त्याग और तपस्या के अंकुर नहीं बोये, वह मां आने वाले कल में अपने बच्चों से क्या आशा कर सकती है।

(१२८)

जब कोई किसी की पहली बार शिकायत करे तो लगता है शायद ऐसा ही हो। जब वह व्यक्ति बार–बार, हर बार दूसरों की शिकायत करता है, तो लगता है, यही व्यक्ति झूठा और मक्कार है। शिकायतें लगाना ही इसका स्वभाव है। वह काठ की हंडिया सा दिखने लगता है।

(१२९)

स्वागत के लिए कहा गया एक शब्द "आइए" कहने के ढंग से ही पता चल जाता है कि स्वागतकर्त्ता कितने प्रतिशत स्वागत कर रहा है। ठंडाई से कहा "आइए", रूखाई से कहा "आइए", मरी आवाज से कहा "आइए", गर्म जोशी से कहा "आइए", उतावली से कहा "आइए", जोर से कहा "आइए", आदर से कहा "आइए" सब भिन्न–भिन्न अर्थ रखते हैं।

(१३०)

यह एक आम आदत है कि दूसरों में लोग अच्छाई कम, बुराई अधिक तलाशते हैं। यहीं आदत दिलों की दूरियां और नफरत

पैदा कर देती है। गुण ग्राही बुराईयों को नहीं देखता इसी से प्रसन्न रहता है।

(१३१)

विचार, मनुष्य की अनुभव और अध्ययन से अर्जित सम्पदा है, और जीवन उसकी करनी का फल। आवश्यक नहीं कि मनुष्य के विचारों के अनुसार ही उसे जीवन मिले, बहुधा व्यक्ति जो जीवन प्राप्त करते हैं, उसके विषय में पछताते और शिकायत करते ही नजर आते हैं। विचारों के अनुसार ही जीवन प्राप्त हो जाए, ऐसे भाग्यशाली तो कोई विरले ही होते हैं।

(१३२)

जीवन में कभी–कभी ऐसे भी क्षण आते हैं, जब व्यक्ति कुछ सार्थक सोचता है, सार्थक सुनता है सार्थक सृजन करता है और सार्थक जीता है। ऐसे चाहे कितनी लम्बी आयु प्राप्त हो, उस सारी आयु में वहीं क्षण अनमोल हो जाते हैं।

(१३३)

बहुत बचपन से ही अपने आपको पवित्र बना कर रखने की भावना शायद पूर्व जन्म के संस्कारों से होती है, फिर भी बुराई की और मन इस तरह झुक जाता है जैसे पानी निचाई की तरफ चला जाता है। मन को अच्छे संस्कार देने के लिए प्राणों को उसी प्रकार उर्ध्वगामी बनाना पड़ता है जैसे पानी को विद्युत के सहारे पर्वत पर पहुंचा दिया जाता है।

(१३४)

पर्वत पर पहुंचकर एकत्र किया गया पानी, ऊर्जा का स्रोत होता है। विद्युत शक्ति से भरपूर होता है। उसका ठीक ढंग से प्रयोग, विद्युत की इतनी शक्ति पैदा कर देता है कि प्रकाश और उष्मा से संसार को भर दे। प्राणों को सुव्यवस्थित ढंग से उर्ध्वगामी बनाने पर व्यक्ति के भीतर भी ऐसी उष्मा और ज्योति का विकास हो जाता है।

(१३५)

समझोता इस बात का पर्याय या प्रयास है कि व्यक्ति अपने विचारों और अपनी क्षमताओं के आगे एक सीमा रेखा लगाकर कही कुछ अपने को विवश बना लेता है । जैसे पिता अपने पुत्र को राजपाठ सौंप कर राजा न रहने की विवशता मोल ले । या अपने कुछ अधिकारों को दूसरों के लिए बलिदान करके अपनी क्षमता का दायरा कम कर दे । स्वेच्छा से मौल ली गई विवशता में बलिदान की भावना होती है और इससे आत्मिक सुख मिलता है ।

(१३६)

विवशता एक सीमा रेखा को पार करके दुखद मजबूरी बन जाती है । जब अनिच्छा से बातें सुनने पर आप मजबूर हों, धन के अम्बारं लगे हों पर भूखे मरने पर विवश हों, किसी पर अकारण अत्याचार को देखने पर मजबूर हों, ऐसी अनेकानेक मजबूरियां हैं, जिनकी गणना अनन्त है। और ये विवशताएँ व्यक्ति को आत्मग्लानि से भर देती है।

(१३७)

संतानों को बीज रूप में जो संस्कार हम देते हैं उसमें बहुधा स्वाभाविक भिन्नता का समावेश होता है। प्रकट में हमारी आदतें उनमें नहीं आती, भावनात्मक तरीके से जैसा हम उनके लिए इच्छा या भय से उनका वैसा होना सोचते हैं। अधिकतर प्रायः हम स्वयं अनुमान नहीं लगा सकते कि हमारे बच्चे हसमें इतने भिन्न क्यों हुए ?

(१३८)

कोई आवश्यक नहीं कि हमारे बच्चे हमें अवश्य प्रेम करें । समाज के भय से भले ही थोड़ा बहुत सम्मान करें परन्तु प्रेम पूर्ण भावनात्मक संबन्ध माता पिता के उचित, अनुचित व्यवहार, आचरण, विचार, उपेक्षाओं और अपेक्षाओं के कारण घट, बढ़ सकता है और मूलतः नष्ट भी हो सकता है। इसीलिए सन्तानों को अनुकूल बनाने के लिए बड़ों को पहले अपना सुधार कर लेना चाहिए ।

(१३९)

व्यक्ति जब राजनीति के चक्कर में फंस जाता है तो वह कूटनीतिज्ञ होने लगता है। फिर यह भ्रम होने लगता है कि वही व्यक्ति जो इतना देश भक्त लगता था, देशभक्त नहीं रहा और कोरा पाखण्ड कर रहा है । व्यक्ति इस चक्कर में निःस्वार्थता छोड़कर कब स्वार्थी बन जाता है वह जान भी नहीं पाता।

(१४०)

भगवान श्री कृष्ण ने गीता में कहा कि जो मुझे भजता है, मुझे प्राप्त होता है । जो देवी देवताओं, भूतों को भजता है वह अपने अपने इष्ट को ही प्राप्त होता है तो जो आज यह कहते हैं कि विषयों को सेवन करने से भगवान प्राप्त होते हैं, वह ईश्वर को नहीं, विषयों को ही प्राप्त होगें। अपनी नीच भावनाओं का सेवन करने वाला कभी ऊँचा नहीं उठ सकता ।

(१४१)

जो सभ्यता और संस्कृति बनती है, वह बड़ी—बड़ी परीक्षाओं से गुज़र कर ही बनती है । धर्म के नियम भी कानून के नियमों की तरह सोच समझ कर बनाए जाते हैं। अतः अनेक प्रकार के व्यवहारों का निचोड़ या निष्कर्ष लेकर विद्वान लोग धर्म के नियम बनाते हैं। इनमें भी वही नियम अनुकरणीय हैं, जो तर्क और सत्य की तुला पर तुल चुके हैं।

(१४२)

नीति बच्चों का खेल नहीं है, जो फुटबाल की तरह किक्कें लगा कर खेला जाए। यह नीति का दुरोपयोग है । नीति के नाम पर झूठ और मक्क़ारी का प्रयोग है । नीति का दण्ड़ सुयोग्य हाथों में ही सजता है । सुयोग्य हाथों में ही सदोपयोग पाता है ।

(१४३)

चोर, लफंगा, बदचलन होना शर्म की बात है, गरीब होना नहीं । यदि आज आप धनवान हो गए हैं, कल गरीब थे तो अपनी कल की गरीबी को याद करके आज अमीरी के अभिमान से बच सकते हैं। और अन्य गरीबों को अपने समान समझ सकते हैं। गरीब ऐसे व्यक्ति को अधिक सम्मान दे सकता है ।

(१४४)

हम गरीब नहीं हैं, बड़े खूबसूरत बंगले में रहते हैं। इसी से गरीबों के साथ घृणा का व्यवहार करके हम उनकी आंख में काटे की तरह चुभें, इससे तो अच्छा है कि हम अपने प्रेम और सहानुभूति से उन्हें भी अच्छा बनने के प्रयास में सहायता दें।

(१४५)

खूबसूरत से खूबसूरत कपड़े और आभूषण पहनने से क्या होगा ? हम जो. हैं वही रहेगें । कोई आवश्यक नहीं मन को शान्ति मिल जाए परन्तु जरूरतमंदों को कपड़े पहनाकर, खाना खिलाकर ऐसा संतोष मिलता है कि जिसकी कोई सीमा ही नहीं। मनुष्य आनन्द से विभोर हो उठता है ।

(१४६)

ईश्वर ने कृपा करके तरह–तरह के व्यंजन खाने को दिये हैं अकेले खाते जाएंगे तो पेट गड़बड़ा जाएगा कई रोग आ जाएंगे । बाँट कर खालो आत्मतृप्ति के आनन्द से और स्वास्थ्य से मालामाल हो जाओगे ।

(१४७)

धन न होने पर सब धनवानों को गाली निकालते हैं परन्तु धन आते ही स्वयं भी उनके जैसे ही बन जाते हैं ।

(१४८)

डरते रहने वाला कुछ भी नहीं सीख सकता, पानी में कूदे बिना तैरना नहीं आता। सीखे बिना गाड़ी चलाना नहीं आता। लोगों से मिले बिना उठने बैठने, बातचीत करने का ढंग नहीं आता, पढ़े बिना ज्ञान नहीं आता। किनारे बैठे जो छलांग लगाने से डरता रहे वह मूढ़ रहेगा। वह व्यक्ति डरपोक पशु की तरह जीये गा।

(१४९)

काम वासना में डूबा हुआ काम वासना को ही ईश्वर समझता है। चौबीसों घंटे काम वासना के ही गीत गाता है। उसकी दृष्टि में वासनाओं के उपभोग से श्रेष्ठ कुछ है ही नहीं, तो फिर बिना ठोकर खाए वह ईश्वर प्राप्ति को कैसे श्रेष्ठ कह सकता है ? उसे कैसे यह आवश्यकता प्रतीत हो सकती है कि वह वासानओं से अपने को मुक्त कर सके।

(१५०)

मनुष्य जानता है कि झूठ बोलना बुरा है फिर भी झूठ बोलता है, जानता है कि चोरी करना बुरा है फिर भी चोरी करता है । जानता है फिर भी वह सारे बुरे कर्म कर लेता है । जानते हुए भी अनजान सा बना रहता है, इस लिए इसे सचेत जागरूक बनाने के लिए ही सद् ग्रन्थों का पठन पाठन तथा सत् पुरुषों

का सत्संग नित्य–प्रति करने की आवश्यकता है ताकि झाड़ू रोज़ ही लगा लिया करे ।

(१५१)

जिससे जितनी अधिक प्रेम की कामना की जाती है उससे उतनी ही अधिक मात्र में (कामना की पूर्ति न होने के कारण) शिकायत होती है, क्रोध आता है। तृशणाओं की आपूर्ति के कारण अपने अवगुणों पर विजय पाने के लिए, कामनाओं को ही समाप्त या कम करना पड़ता है। किसी भी व्यक्ति की तमाम कामनाओं की पूर्ति असंभव है।

(१५२)

बार बार पुनरावृति आदत को जन्म देती है, आदत स्वभाव बन जाता है। स्वभाव से ही चरित्र का गठन होता है और समय बीतने पर वही मनुष्य का पूर्ण दर्शन बन जाता है। इसका प्रारम्भ बचपन में मां की कोख से ही हो जाता है। अतः एक दिन का नहीं, मनुष्य के संपूर्ण जीवन का सार तत्व मनुष्य का दर्शन है ।

(१५३)

जब व्यक्तियों का निर्माण केवल बैठक, घरों (ड्राईंग रूम) की शोभा बढ़ाने को ही किया जाता है तो वह बैठक की शोभा ही बन कर रह जाता है । हर व्यक्ति को संघर्ष झेलने ही पड़ते हैं। क्यों न उनके लिए भी उन्हें तैयार किया जाए।

(१५५)

प्रत्येक व्यक्ति जब अपने ही स्वार्थ से दूसरे व्यक्तियों और वस्तुओं को देखने का दृष्टिकोण बनाकर संसार क्षेत्र में उतरता है तो उसे अच्छाइयां कम, बुराइयां अधिक नजर आती हैं । दृष्टिकोण बदले बिना अच्छाइयों के मुँह से परदा हटाना कठिन है ।

(१५६)

धन से आराम मिलता है सुख नहीं । दान से सुख मिलता है आराम नहीं। सुख और आराम दोनों को प्राप्त करने के लिए यथेष्ट ढंग से धन कमाना और उदार हृदय से दान देना दोनों ही आवश्यक हैं।

(१५७)

धन को साध्य समझ जिस किसी ढंग से भी उसे प्राप्त करने का प्रयत्न मनुष्य की सारी शान्ति समाप्त कर देता है। धन को साधन बना कर्म के क्षेत्र में आचरण को शामिल कर लेने से व्यक्ति होश नहीं खोता है। उसे मानसिक संतोष प्राप्त होता है।

(१५८)

मनुष्य यह सोचता है कि यह मुसीबत इस तरह न आकर, उस तरह आती तो उसे आसानी से पार कर लेता। परन्तु यदि मुसीबत को उससे पूछ कर ही आना होता, तो मुसीबत ही क्या थी ।

(१५६)

जीवन की सफलता का प्रमाण यह नहीं कि मुसीबत आई ही नहीं। बल्कि यह है कि जो जो मुष्किलें आईं उनको किस किस ढंग से पार किया।

(१६०)

तुमने सहन न करने की कसम खा ली और मैं ने सहन करने की। अब तो देखना यह है कि तुम कहाँ तक नहीं सहोगे और मै कहां तक सहती जाऊँगी ।

(१६१)

व्यर्थ खो रहा हर लम्हा अगर किसी काम के नाम लिखा गया होता तो बसीयत में जरूर कुछ न कुछ इनाम दे जाता। अब जब व्यर्थ में खो कर इनाम न पाया तो इल्जाम दे गया।

(१६२)

दूसरों के खेत में कांटे बुए देख कर मन तड़प उठता है, परन्तु कोई भी घड़ियाल की आवाज़ नही सुनता, न कांटे उखाड़ फैंकनें को राज़ी होता है । तू अब अपना खेत देख और अपने ही कांटे उखाड़ कर जलाने शुरू कर दे, कहीं ऐसा न हो कोई कांटा रह जाए, और रात के अंधेरे में तुम्हारे ही पांव को छेद दे ।

(१६३)

मेरी कश्ती की डोर एक तरफ तुम्हारे नाम सं बंधी है दूसरी इस संसार से । दोनो अपनी अपनी ओर जोर लगाते हैं । अच्छा है

इस कश्ती में मैं नाम का अमृत पी कर निश्चिंत बैठ जाऊँ, जो सत्य होगा वो जीत जाएगा।

(१६४)

गृहस्थी को परिग्रही होना आवश्यक है क्योंकि वित्त से ही संसार के सारे कार्य सम्पन्न होते हैं। परन्तु परिग्रही का अर्थ कृपणता नहीं। आज से दस वर्ष पश्चात आने वाली परिस्थिति की तैयारी आज करनी चाहिए, नहीं तो एक दिन ऐसा आएगा जब परिस्थितियां परिवार को निगल जाएंगी।

१६५

पारस्पारिक व्यवहार में हम यदि स्पष्ट और साफ हों तो वैमनस्य पैदा होने के कारण समाप्त हो जाते हैं । प्रियजनों में लेन देन में कोई अस्पष्टता नहीं होनी चाहिए। व्यापार में तो वही सांझीदार लंबा मार्ग तय कर सकेंगे जो एक एक पाई का हिसाब दुरुस्त और स्पष्ट बनाए रखें । जहाँ संदेह आया नहीं कि सारा गुड़ गोबर हुआ नहीं।

१६६

पति–पत्नी एक दूसरे का विश्वास न जीत सके तो जीवन भर जिन्दगी कलह पूर्ण ही रहेगी। आगे आने वाली सन्तान आने माता–पिता का मान भी नहीं कर सकेगी।

१६७

बुद्धिमता से अपना कार्य करने वाला व्यक्ति भविश्य तो अपना संवारता है शोभा दुनिया से लेता है । मूर्ख अपना घर बिगाड़ कर दूसरों की हंसी का पात्र बनता है ।

१६८

ब्राह्मण परिवार में मनुष्य जन्म प्राप्त हो यह बड़े सौभाग्य की बात है। परन्तु ब्राह्मण होकर नीच कर्मों में प्रवृत्त रहना उतने ही बड़े दुर्भाग्य की बात है।

१६६

आज ऐसा समय आ गया है जबकि ब्राह्मण होना भी एक अभिशाप बन गया है नौकरी के लिए दर दर की ठोकर खा कर भी ब्राह्मण भूखा और अभावग्रस्थ हो गया है। क्या अछूतोद्धार करते करते ब्राह्मणत्व के गौरव को पैरों के नीचे रोंद दिया जाए ?

१७०

कहने को तो असम्प्रदायिकता/समानता का नारा लगाया जा रहा है पर कर्म में यह नारा लगाने वाले ही सम्प्रदायिकता तथा असमानता को बढ़ावा दे रहें हैं ।

(१७१)

ओ मूर्ख मनुष्य, कामनाओं, विषयों में अपनी आसक्ति के कारण तुमने अपने लिए ऐसी ऐसी जेलें, ऐसे ऐस बन्धन स्वयं ही तैयार कर लिए हैं कि अन्य जन्म जन्मान्तरों तक गर्दभ की तरह परिश्रम करता रहे फिर भी इनके फंदों से निकल नहीं पाएगा ।

(१७२)

अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए नारी लाया, फिर नारी से सन्देह का 'भूत पाल कर' द्वेष पाल लिया । घर में आराम नहीं कि अभावों का जलूस मुँह बाऐं खाने को आ रहा है । बाहर चैन

नहीं कि पत्नी पर सन्देह की आग जला रही है ओ कोहलू के बैल तेरी अपनी वासना ने ही तेरा यह हाल कर दिया है।

(१७३)

बहुत आराम ही बहुत से उपद्रवों का सूत्रपात करता है। क्योंकि शरीर जितना ही आराम में रहता है, उतनी ही तेजी से नए उपद्रवों का जोड़ तोड़ कर लेता है ।

(१७४)

यह जानते हुए भी कि अतिशय विषय भोगों ने अनेकानेक रोगों को जनम दे कर मनुष्य जीवन को अभिशाप बना दिया है। लोग इसी ओर भागे चले आ रहें हैं । आश्चर्य है कन्दर्प की इस अदभुत आकर्षण शक्ति पर साथ लटकती हुई मृत्यु की तेज़ धार वाली कटार पर कोई ध्यान ही नहीं देता ।

(१७५)

पुराणों में नरकों का वर्णन पढ़ कर भी, और अपनी दृष्टि के आगे खुले संसार में जीते जागते नरकों को देख कर भी, ए मन, तू कैसा पथिक है, जो विषय मधु के लिए व्याकुलता संजोए स्वयं ही गहरे कुँए की तरफ लपका चला जा रहा है।

(१७६)

भगवद् भजन में ध्यान लगाने के लिए विषय अनुराग का त्याग और शारीरिक स्वच्छता दोनों की आवश्यकता है। गन्दगी के ढेर पर बैठ कर, विषयों की चर्चा चलाकर

कभी मन प्रभु चरणों में प्रवृत्त हो सकता है ? कदाचित नहीं ।

(१७७)

छुआछूत बुरी है । दूसरों को नीच कह कर उनका अपमान करना बुरा है । क़िसी हरिजन ने आपका बर्तन, कपड़ा छू दिया तो उस पर गाली गलौच करना बुरा है । इससे अपने ही मन की तुच्छता उजागर होती है । परन्तु स्वच्छता के लिए खानपान की शुद्धता का ध्यान रखना सात्विकता के लिए है गंदगी से बचना आवश्यक है ।

(१७८)

गन्दगी से बचने के लिए, नजर फिरा कर, आंख बचाकर निकल जाना तो समस्या का समाधान नहीं है, गन्दगी को हटाकर स्वच्छता लाना ही हितकर है। इसीलिए प्रभु के दरबार मे मदर टेरेसा जैसे लोग, अत्यनत बुरी बिमारियों से ग्रस्त मानवता को भी सहानुभूति पूर्वक अपनी कर सेवा में प्रसन्न हो जाते हैं। ईश्वर प्रेमियों की पहली पंक्तिं में स्थान पाते हैं।

(१७६)

मानवता का सेवक ही प्रभु का सच्चा पुजारी है। सारा जीवन राम राम जपने से क्या होता है यदि दूसरों की पीड़ा देखकर ह्रदय प्रवृत्त न हो सके तो ।

(१८०)

यदि कोई छोटी जाति का मनुष्य नीच कर्म करे तो कहा जाता है वह तो है ही नीच । परन्तु जब कोई उच्च वर्ग में जन्म लेकर नीच ही रहे तो मनु महाराज ने मनुस्मृति में उसे कठोर से कठोर दंड़ देने का विधान दिया है।

(१८१)

सच्चे सेवक के सामने यदि एक कुष्ट का रोगी अति नीच व्यक्ति भी हो तो वह उसके लिए भगवान की जीती जागती प्रतिमा बन जाता है। ऐसा सेवक सेवा के बदले में कुछ नहीं मांगता। यदि सेवा करते करते स्वयं कुष्ट रोग से ग्रस्त हो जाए तब ही उसका मन मलिन नहीं होता ।

(१८२)

मुझे जितना सुख मिल रहा है वह प्रभु पल–पल तुम्हारा आर्शीवाद मिल रहा है। परन्तु जो कष्ट मिल रहा है वह, मेरे ही कर्मों का परिणाम है ।

(१८३)

अच्छा ही किया प्रभु, तुमने जो मुऐ कीर्ति में नहीं फंसने दिया। आज जो कीर्ति के लिए घर से निकलते हैं, उन्हें अपकीर्ति ही प्राप्त होती देखी गई है ।

(१८४)

जो किसी का कुछ भी नहीं करता उससे कोई आशा भी नहीं करता, जो कुछ करता है उससे और आशा की जाती है,

कुछ बहुत कुछ करता है, उससे छोटी सी भूल भी हो जाए तो वह भूल अक्षम्य हो जाती है ।

(१८५)

जो जितने ऊँचे सिहांसन पर बैठने के लिए स्थान प्राप्त करता है, उसके सिर पर उतनी ही तेज़ तलवार लटकती है। ज़रा चूका कि फट से कट जाला है और उसका नीचे गिरना भी उतना ही भीषण हो जाता है ।

(१८६)

मेरे सामर्थ्य में कुछ नंहीं, तुमने ही कुछ कृपा की तो मैं कुछ करने योग्य हो गई । अब तू चाहेगा तो अच्दे से अच्छा कर्म मुझ से करवा लेगा ।

(१८७)

तुम्हारे माया के आवरण ने सब कुछ ऐसा अज्ञांत के गर्भ में ढ़क रक्खा है कि प्राणी युगयुगान्तरों से इसके जाल में फंसा हुआ आज तक त्राण नहीं पा सका।

(१८८)

शब्द का प्रभाव बाह्य दृष्टि के लिए अदष्य होकर भी व्यापक है, कर्ण रन्द्रों से ह्रदय में प्रवेश पाता है । शब्द के जाप का प्रभाव अनश्वर है । फिर भी जाने क्यों मूर्खता वश प्राणी ऐसे शब्दों का उच्चारण करता है जो बहुत घृणित हैं। उन शब्दों के बोझ से दबा हुआ ऊपर उठ ही नहीं सकता ।

(१८६)

कूशब्दों का नाद प्राणी को निम्न स्तर में धकेल देता है और सुशब्दों का नाद प्राणों की गति ऊर्ध्वगामी बना देता है। शब्द कुछ नहीं फिर भी कुछ है, शब्द ब्रह्म की प्राप्ति करवाता है। इस लिए अपनी जिह्वा से अच्छे शब्दों का प्रयोग या उच्चारण करना चाहिए ।

(१६०)

आपको ईवर नहीं चाहिए न सही, परन्तु आपको रोग निर्धनता, दुखः दैहिंक, दैविक और भौतिक सन्ताप भी तो नहीं चाहिए ? कम से कम इन तापों से बचने के लिए ही शब्द की महिमा को समझ लो, प्राणी ।

(१६१)

अच्छे शब्दों के उच्चारण से तुम्हारा कुछ खर्च नहीं होता । परन्तु निरन्तर अच्छे और प्रभु के गुणगान भरे शब्दों को ही मनन करने से, बोलने से, रमने से मिलता है आत्मिक सुख, शान्ति, प्रभु का सामीप्य, असीम आनन्द। तो फिर क्यों नहीं इस दौलत को लूटने चल पड़ते आज ही।

(१६२)

कुटिया में बैठा एक सच्चा सन्त किसी भी अभ्यागत को बड़े

प्रेम से मिलकर उसकी यथा साध्य सेवा करता है परन्तु प्रासादों में बहुमूल्य शानोशौकत से घिरा धनवान किसी भी व्यक्ति के आने से सशंकित हो जाता है कि आने वाला दौलत का भूखा है। अतः वह कभी हृदय से अभ्यागत का स्वागत नहीं करता है।

(१६३)

जिसमें जीवन है । उसी में मृत्यु है । धन में जीवन है तो धन में मृत्यु भी है। इसी तरह ईश्वर में जीवन है तो जीवन का अन्त भी है। परन्तु इस माया से भरे संसार में प्राप्त मृत्यु में तथा भगवान् के चरणों में प्राप्त मृत्यु में महान अंतर है ।

(१६४)

निर्भय होने के लिए दूसरों से सब प्रकार की आशायों का भी त्याग करना पड़ेगा। जिसे दूसरों से ही सब कुछ चाहिए वह भला निर्भय कैसे हो सकता है।

(१६५)

यह संसार तुम्हें मूर्ख बनाने को उद्धत है, तुम किसी को मूर्ख बनाने की इच्छा मत करो । पर इस संसार की मूर्ख बनाने की प्रवृति को समझो और उसकी शतरंजी चाल में से आपने आप को बचाना सीखो ।

(१६६)

दो बुराइयाँ आपस में टकरा जाएं तो उन्हें चकनाचूर होने

दो। दो अच्छाईयाँ टकरा जाएं तो तुरन्त उनके बीच आकर अपने हाथों के संबल से उन्हें बचा लो। यदि अच्छाई और बुराई आपस में टकरा जाए तो अच्छाई को बचाओ।

(१६७)

अपने मद में तुमने भुला दिया अपने भगवान को, खैर कोई बात नहीं। परन्तु यदि उसने तुम्हें भुला दिया तो फिर क्या होगा ?

(१६८)

मूढ़ नारी यदि अनपढ़ होती है तो महाभारत घर के भीतर मचाती है। यदि पढलिख कर योग्य हो जाती है जो अखबारों में लिखकर और स्टेजों पर चढ़–चढ़ कर लड़ना सीखा जाती है। विद्या यदि नारी को नारी सुलभ गुण न दे पाए तो वह विद्या किस काम की।

(१६६)

भगवान के यह विभिन्न रूपों के चित्र जो मेरे सामने हैं यह मुझे याद दिलाते रहते हैं कि इन रूपों में अवतरित होकर प्रभु ने संसार के कल्याण के कार्य किए और संसार में किस तरह जीना चाहिए इसका पाठ पढ़ाया। सच्चाई और ईश्वर के मार्ग पर चलने वालों से ही जीवन जीने का मार्ग समझ आ सकता है।

(२००)

काँय काँय करने वाला काला कौआ चाहे हजारो वर्ष जीता है, तो सिवाय काँय काँय के और कुछ नहीं सीख पाता। एक मनुष्य ही है, जो कम से कम आयु पाकर भी आगे बढ़ने और सदैव कुछ कर सकने या सीखने की सामर्थ्य रखता है। यहां तक कि गूढ़ से गूढ़ रहस्य खोल कर भी छान बीन कर मोक्ष का द्वार तक खोल सकता है ।

(२०१)

हे मनुष्य, अपने मानसिक तनाव को दूर करने के लिए शराब और तम्बाकू इत्यादि के हानिकारक उपायों का आश्रय क्यों लेता है, जो धन और स्वास्थ का नाश कर दे। क्यों नहीं प्रभु नाम की मदिरा से मतवाला हो जाता, जो मानसिक तनाव को दूर ही नहीं करती बल्कि शक्तियों से ओत प्रोत कर देती है।

(२०२)

यह एक विचार की नदी है, जिसमें ज्ञान और अज्ञान के सभी तत्त्व बह रहे हैं हर व्यक्ति अपनी रूचि से दूसरे बहते तत्वों में से अपने मन चाहे तत्व बीन लेता है। मनुष्य की महानता का माप दण्ड यह होता है कि उसने क्या बीना ? किसे महत्त्व दिया ?

(२०३)

पूजा में धूप दीप जलाने से दीप का प्रकाश नेत्रों को बंद करने पर भी लौ को अकिंत कर देता है और धूप की मादक सुगन्ध मन को एकाग्र करने में सहायता करती है, मस्तिष्क में एक

मस्ती पैदा करती है। जिससे इधर–उधर से हट कर ध्यान मन्त्र पर टिक सके।

(२०४)

सद्‌गुरू की बहुत महिमा है। सद्‌गुरू असल में वाणी द्वारा न कहा जाने वाला ज्ञान शिष्य के भीतर अपनी शक्ति के द्वारा, स्थापित कर देता है। शक्तिपरायण गुरू मृत्योपरांत भी अपने शिष्य को अपनी शक्ति से सम्पन्न रखता है, जिससे न पढ़े हुए ग्रन्थ भी प्रकट हो जाते हैं, न सुने हुए श्रुति वाक्य भी साकार होकर समक्ष खड़े हो जाते हैं।

(२०५)

संसार में नाना भांति के विचारों के लोग हैं, जो अपने अपने विचारों को ही युक्ति–संगत सिद्ध करके, दूसरों को उनसे प्रभावित करके, अपना प्रभुत्व जमाने में प्रयत्नशील रहते हैं। ऐसे उलझे हुये संसार में सद्‌विचारों की रक्षा करके भवसागर से पार अपनी नैया को खे कर ले जाने का बल प्रभु दे सकते हैं। मनुष्य की बुद्धि कभी भी फिसल सकती है।

(२०६)

'सम्राट' के पास जा कर रोटी का एक टुकड़ा मांगना अथवा सर्व समर्थ के पास जाकर केवल विषयों की पूर्ति की इच्छा करना, जीवन के प्रयत्नों का यदि यही उद्देश्य हो तो प्रयत्न करना ही व्यर्थ है।

(२०७)

जीवन नदी की तरह चलता रहे तो जीवन है। सागर में मिल कर सागर हो जाने के बाद अस्तित्व ही कहां रहता है। जब तक बहता है जितना जल पिला सकता है, पियो, जितने खेत सींच सकता है सींचो, कमी नहीं आने की। मृत्यु के सागर में मिल गया तो दूसरों के चेहरे की तृप्ति और लहलहाते खेतों का उन्माद देखने का सौभाग्य कैसे मिलेगा ? हां यदि जीवन प्रकृति और मानवता की मुस्कान के लिए काम आए तो जीवन कृतार्थ हो जाएगा।

(२०८)

रेल गाड़ी प्रतिदिन लाखों यात्रियों को उनकी मंजिल पर पहुंचाती है। परन्तु यदि कहीं एक छोटी सी फ़िश प्लेट खुली पड़ी हो तो अपने पर सवार लोगों को लेकर दुर्घटना ग्रस्त हो जाती है। ऐसे ही साधु पुरुष में थोड़ा सा विषय अनुराग उसे तो ले ही डूबता है, अपने संग चलने वालों को भी डुबा देता है।

(२०६)

जन्म देकर प्रभु की माया हमें, ऐसे दोराहे पर खड़ा कर देती है, जहां से चाहें तो हम उसकी कृपा की तरफ हाथ पसार कर उसे प्राप्त कर लें और चाहें हम उसकी ही रची मृग तृष्णा में भ्रमित होते रहें। मार्ग निर्धारण के लिए विवेक की कुंजी भी सौंप दी उसने तथा निर्णय लेने में हमें स्वतंत्र कर दिया।

(२१०)

'होली खेलत है गिरधारी' इस बृहद् आकाश को धारण करने वाले ज्योति स्वरूप दिन रात कैसी विचित्र होली खेलते रहते हैं। देखो तो, इस सारी प्रकृति को शत–शत रंगों की कैसी दिव्य छटा से उसने सजा रक्खा है। जो प्रति पल अपने आप रूप बदल–बदल कर प्राणी मात्र को लुभा रही है, रंग रही है।

(२११)

तेरा ज़रा सा सिमरण नयनों में ऐसा रस भर देता है कि हर देखने वाला तेरे नन्हें भक्त को तेरी शक्ति से आरोपित समझने लगता है। जो तेरे रंग में डूब कर गुम हो गया हो उसके क्या कहने !

(२१२)

मन, सम्पूर्णतया उस पूर्ण पुरुष को अपना सर्वस्व एक बार बना कर तो देखो। फिर क्या निद्रा, क्या जागरण, सब सत्संग मय हो जाएगा। जिसने इस उत्सव में अपने को डुबा दिया उसे दुनिया के व्यापार तो फीके लगेंगे ही। कौन उस महोत्सव को छोड़, यह झूठी लीलाएँ खेले ?

(२१३)

कबाड़ी कूड़े कचरे के दाम में कबाड खरीदता है पर कभी–कभी उसी कबाड़ में से कोई मूल्यवान वस्तु उसे प्राप्त हो जाती है और वह माला–माल हो जाता है। कई बार इसी तरह व्यक्ति को मिल जाता है कोई सिद्ध पुरुष, जो उसके जीवन का पथ ही मोड़ देता है और उसे अनमोल बना देता है।

(२१४)

नाराज़गी के डर से न्याय का पक्ष छोड़कर कायर बनने से तो अच्छा है हम मनुष्य ही न बनते। आखिर अन्याय और असत्य कब तक शासन करेगा। जब न्याय सटीक होगा तब अन्याय का साथ देने वाला क्या नहीं पिसेगा।

(२१५)

मन सधा हो तो कोलाहल भी कुछ बिगाड नहीं सकता। यदि मन ही नहीं सधा हो, तो ज़रा सी आवाज़ भी ध्यान भंग कर देती है।

(२१६)

जब तुम मेरी त्रुटियों की ओर मेरा ध्यान आकर्षित करके शर्मिन्दा करते हो तो वास्तव में तुम मेरे अन्तर का शोधन करते हो। यदि तुम ऐसा न करते तो मैं इतना प्रांजल, सुस्पष्ट और सटीक सोचने का मार्ग कहां से पाती। तुम्हारे इस मार्ग दर्शन से मेरे विचारों का संतुलन सुस्थिर रहता है।

(२१७)

जप करते–करते विचार किसी बात पर अटक जाता है तो जप यहां का तहां रुक जाता है। जैसे रिकार्ड की सूई अटक गई हो। उपजा विचार पर जोहड में बने भंवर सा

मन में फंस कर रहा जाता है। जप का ध्यान आते ही भंवर तिरोहित हो जाती है तथा जप की धारा बहने लगती है।

(२१८)

तुमने मेरे लिए जो कुछ रचा, बहुत सोच विचार कर ठीक ही रचा। मेरी अल्प बुद्धि ने ही तेरे महान विधान को नहीं समझा। जब समझा तो तुम्हारी महानता पर बलिहारी हो उठी। धन्य हो प्रभु।

(२१९)

इस बाहर के दृष्टिगोचर संसार का भी ओर छोर पाना कठिन है। तो इस भीतर के संसार का, जो इस बाहर वाले से भी बहुत ही बृहत् है, औरछोर का ठिकाना ही क्या ? तुम असीम हो तुम्हारा पैमाना भी असीम है।

(२२०)

छोटा बड़ा बनाने से नहीं बनता। छोटा होने पर बड़ेपंन का बड़प्पन उजागर करता है, सो बड़ा है। पद, अधिकार, धन इत्यादि का बड़ापन एक दिन अध्यात्मिक शक्ति के बड़प्पन के आगे नत मस्तक हो जाता है क्योंकि वहां भगवान की अपार कृपा का गुरूत्व होता है।

(२२१)

राग, द्वेष, काम, लालच से भरी बातें करने वाले लोगों की संगति मन को दूषित कर ही देती है। ऐसी बातों में

मशगूल लोगों को ईश्वर, अध्यात्म या परमार्थ ऐसी कोई बातें सुहाती नहीं हैं। अतः भैंस के आगे बीण बजाने से चुप रहना ही अच्छा है।

(२२२)

दुःखी व्यक्ति अपने दुःख की दीर्घता के कारण संसार से निराश हो जाता है। दुःख से त्राण पाने को आतुर होता है। ऐसे व्यक्ति के पास जाकर उसका कष्ट सुनना और कष्ट से छुटकारा पाने का मार्ग दिखा कर प्रभु भक्ति की तरफ मोड़ा जाए तो ऐसे व्यक्ति की मानसिक अवस्था को सुधारा जा सकता है। मानसिक स्वस्थता मनुष्य को आशावान् और कर्मन्य बनाती है।

(२२३)

निन्दक का स्वभाव है निन्दा करना। हमें तो वहीं करना है जिसमें सब का भला हो। इससे मन में कालिमा नहीं जमेगी।

(२२४)

सिमरण जब निर्बाध चलेगा तब कारण होने पर भी राग, द्वेष से निवृत्ति होगी ! ऐसा व्यक्ति कठिन परिस्थिति में भी नहीं घबराएगा।

(२२५)

संसार के लोग चाहते हैं आप उन्हें प्यार करो, उनके सुख–दुः,ख को अपनाओ। हमारा व्यवहार ऐसा ही होना

चाहिए। इससे सब को सुख मिलेगा। पर अपने भीतर ईश भक्ति उमड़ती रहे ऐसा ही प्रयत्न होना चाहिए।

(२२६)

कीर्ति की इच्छा से अविभूत ही मनुष्य अच्छाई और विद्वत्ता की ओर पग बढाता है। जीवन में सेवा, तप, त्याग, परमार्थ में प्रवृत्त हो जाए तो कीर्ति मिलेगी ही।

(२२७)

उपेक्षा करने वालों का भला हो कि उन्होंने अपने मोह बंधन से छुड़ा लिया। अब दूसरों से कोई अपेक्षा न करें तो और भी सुख होगा।

(२२८)

भला करता चल, आगे बढता चल। जिन्हें तुम्हारी आवश्यकता है वह आगे मिलेंगे। नदी के जल की तरह उन्हें भी तृप्त कर, फिर और आगे चल।

(२२६)

जो लोग अपने धन और अभिमान में तुम्हें भूल गए हैं। उन पर अब बोझ मत बन। जब उन्हें कष्ट होगा, वह तुम्हें याद करेंगे, तब तुम औषध बन कर चले जाना।

(२३०)

किसी ने तुम्हारा बुरा किया, भूल जा। समय उसे स्वयं शर्मिन्दा करेगा। भले ही वह शर्मिन्दगी दिखाने न आए पर उसकी आत्मा उसे जरूर धिक्कारेगी।

(२३१)

अपने नारीत्व की रक्षा का अहसान अपने पति पर करने की क्या आवश्यकता है। हमें तो अपनी पवित्रता अपने लिए अनमोल है।

(२३२)

स्वार्थ जब अपनी मुट्ठी कसता है तो अपने सहायकः अविश्वास और सन्देह को भी साथ लाता है। तब रज्जु भी सांप दिखाई देती है। नुक्सान उठाए बिना होश नहीं आती। होश आ जाए यह प्रभु कृपा है।

(२३३)

झगड़ालू को सब झगड़ालू दृष्टि गोचर होते हैं। हंसी मज़ाक या सौहार्द से कही बात भी उन्हें ताना लगती है। वह अपनी आदत से दूसरों का जीना हराम कर देता है और समझता है दूसरों ने उसका जीवन हराम कर दिया है।

(२३४)

बढ़िया से बढ़िया भोजन जिन्हें स्वाद नहीं देता, मुलायम से मुलायम बिस्तर शयन सुख नहीं देता। बढिया आलीशान आवास सुख नहीं देता। स्नेही से स्नेही प्रिय जन स्निग्ध नहीं करते। बृहत् से बृहत् कोष तृप्ति नहीं देते, अधिक से अधिक ज्ञान सन्तोष नहीं देता, वह या तो महान योगी हैं या अति विलासी।

(२३५)

शासन करने की प्रवृत्ति व्यक्ति को कठोर और हृदय हीन बना देती है। अधीनस्थों से सद्भावना पूर्ण व्यवहार व्यक्ति को व्यक्ति से जोड देता है। निश्छल व्यवहार हमारे संसार का विस्तार कर देता है।

(२३६)

प्रभु प्रेम की चोट लग जाए तो मन को कितना सुख मिलता है ! ध्यान के अनुभव की बात तो किसी सिद्ध पुरुष से पुछिए। मुझ तुच्छ को आपने अच्छी दृष्टि से देखा, यही बहुत है।

(२३७)

शंका शील होना अथवा दूर दर्शी होना दोनों में बहुत अन्तर है। शंका शील समस्यांए पैदा करता है और दूर दर्शी समस्याओं के समाधान करता है।

(२३८)

नशे में धुत व्यक्ति की मस्ती और ईश्वरीय प्रेम की मग्नता में बहुत अन्तर है। नशे बाज जहां तेज हीन, झूठा होता है। प्रभु प्रेम में पगे मुखमंडल की तेजस्विता, लावण्य और सत्य भाषण उसके अंग–अंग से फूटता है।

(२३९)

भगवान अंशु माली उदय के समय कितने ही क्षीण लगे उनका मार्तण्ड रूप तो सामने आ ही जाता है। आत्मश्लाघा की क्या आवश्यकता। जो है सो संसार जान जाएगा।

(२४०)

संसार मुझे नमन करे ऐसी इच्छा क्यों ? संसार के कल्याण की बलि वेदी पर न्यौछावर हो सकूं तो यहीं सबसे उत्तम नमन है।

(२४१)

स्वस्थ प्रतिद्वन्द्विता खेल के मैदान में या जीवन के खेल में उन्नति का सौपान है। जैसी ही प्रतिद्वन्द्विता में ईर्ष्या ने प्रवेश किया, खेल का मैदान युद्धस्थल और जीवन का खेल नरक का घर बन जाता है।

(२४२)

जीवन में सत्य और हृदय की शुद्धता ही जीतेगी। मन मैला करके घबराने की क्या आवश्यकता ?

(२४३)

खाने को सुस्वादु भोजन, सुनने को सुमधुर स्वर, सूंघने को अच्छी से अच्छी सुगन्ध, पाने को बहुमूल्य रत्न की ही इच्छा की जाती है परन्तु स्वयं बोलने को कटु–भाषण, त्यागने के नाम को मल मूत या पसीना, दान को घटिया से घटिया पदार्थ दिया जाता है। फिर भी हम अपने का सर्वश्रेष्ठ समझते हैं।

(२४४)

कष्ट का सागर पार करके, किनारे लगने वाला ज्यादा खुले दिल से हंस लेता है। नर्म गदेलों पर जिन्दगी बिताने वाला क्या जाने हंसी का क्या मोल है ?

(२४५)

सब से दुर्भाग्य पूर्ण है अपने प्रति दया का भाव। आज से कई वर्ष पूर्व भोगे कष्ट को याद करके हम आज भी फूट–फूट कर रोने लगते हैं। न तो हम उस कष्ट से उभर पाते हैं, न कष्ट देने वाले को क्षमा कर पाते हैं। उल्टा रोना ही आदत बन जाती है, आत्मोन्नति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है।

(२४६)

जीवन के खाली पन को भरने के लिए किया प्रयास कवि को जन्म देता है। कितने ही काव्य गीत अपने अंतर की भेंट करके भी लगता है अभी अपूर्ण को भर नहीं पाए। काव्य व्यक्ति का सहचर बन जाता है। नित नये पुष्पों की वर्षा करता हुआ अपने ही आत्म देव की अर्चना में रत।

(२४७)

सन्नाटा–कवि ही नहीं गायक, नर्तक, वादक, मूर्तिकार अथवा कोई भी कलाकार पैदा कर देता है। अन्तर की यह सकारात्मक अभिव्यक्ति सौभाग्यपूर्ण है। परन्तु जब व्यक्ति इस सन्नाटे के कारण शराबी, व्यसमी, दुराचारी बन जाता है तो उसकी मानवता डूब जाती है। जीवन को भरने का ऐसा प्रयास दुर्भाग्यपूर्ण है।

(२४८)

अस्मिता व्यक्ति का चेहरा नहीं उसका चरित्र है, हृदय है और है जीवन भर किया उसका कर्म। चेहरे विलुप्त हो

जाते हैं पर व्यक्ति का चित्र अमिट बन जाता है। किए हुए कर्म चित्र बन कर बोल उठते हैं।

(२४६)

व्यक्ति का चलना, फिरना, बोलना इत्यादि सब चेष्टाएं उसके अनकहे को कह जाती है। छुपे हुए को उजागर कर देती है। चरित्र अंग–अंग से झलकता है।

(२५०)

जो संस्कार हमारे भीतर पहले से वर्तमान होते हैं, अनुकूलता पाते ही प्रस्फुटित हो उठते हैं। संस्कार प्रबल हों तो दूसरों के कहने से भी छूट नहीं सकते। अच्छा है प्रभु नाम का नशा चढ़ जाए, फिर मारो, पीटो, जो मर्जी करो नशा नहीं उतरेगा। जबकि शराबी का नशा मार–पीट से उतर जाता है।

(२५१)

विषया सक्ति से मन उन्मत्त हो तो प्रभु भक्ति सम्पन्न नहीं होती। मन विषयों से उपराम हो, तो तभी प्रभु चरणों के प्रेम का अमृत पान करता है। इस अलौकिक प्रेम की भूख तेज हुई कि विषयासक्ति कांटों सी चुभने लगी।

(२५२)

गृहस्थ धर्म में आश्रम की गरिमा को रखते हुए विषय सेवन करके भी मन को उनमें रमण करने से बचाया जा सकता है। हृदय की पवित्रता के लिए ऐसा करना ही

चाहिए। जब विषयों से मन उपराम हो जाए तो उनका पूर्ण त्याग कर देने से मन फिर लालायित नहीं होता।

(२५३)

यह पाषाण चुप मौन कुछ कहते से लगते हैं। युगों—युगों की कहानी इन्हीं की जवानी हम जान सकते हैं। पाषाण जब देवता की मूर्ति बनता है तो स्थित प्रज्ञता का प्रतीक बन जाता है। अब पाषाण की भाषा समझो तो युगों का स्वर झनझना उठता है।

(२५४)

पहाड़ का पत्थर, पत्थर है। कलाकार की कृति बन कर पत्थर देवता बन जाता है। पत्थर देवता नहीं, कलाकार की साधना देवता है। कलाकार का हृदय मूर्ति की मुस्कान से मानो टपक रहा हो।

(२५५)

समय का अश्व सूर्य के रथ के आगे जुता है जो इस अश्व पर सवार हो जाने को कटि—बद्ध हो वह अपने जीवन के एक—एक क्षण को स्वर्णाक्षरों में लिख जाता है। जो इसकी राह देखता बैठा रहता है वह आशाओं, कल्पनाओं और स्वप्नों में खोया—खोया सब कुछ खो देता है।

(२५६)

कहते हैं, जिह्वा के संयम से बढ़ कर कोई संयम नहीं। जिसकी वाणी अपने वश में हो, वह संयम की तुला पर भी खरा उतर सकता है।

(२५७)

उज्ज्वल, धुले सफेद कपड़े पहनने से मन में पवित्रता का उदय होता है। रंग बिरंगे भडकीले वस्त्र कामोदय करते हैं। हरा रंग आंखों को ताजगी देता है। इसी प्रकर प्रत्येक रंग का अपना चरित्र है। जोगिया रंग विरक्ति का रंग है। हल्का पीला रंग सात्विकता का रंग है। रंगों का प्रभाव अवश्य होता है।

(२५८)

रात प्रकृति की समाधि है। समाधिस्थ प्रकृति की शक्ति से योगी, ध्यानी, तपस्वी एकाग्रता से रात्रि में अभ्यास कर लेते हैं। बुराई के मार्ग पर चलने वाले भी रात्रि की इस शक्ति का दुरोपयोग करते हैं। जैसे ओस के कण स्वस्थ व्यक्ति को तो और स्वस्थ किन्तु जख्मी पांव वाले के जख्म को और दर्द भरा बना देते हैं।

(२५६)

बुरे व्यक्ति को मार्ग पर लाने का मार्ग यद्यपि बहुत लम्बा है तथापि बुराई को भलाई से ही जीता जा सकता है। बुराई का बदला बुराई से लेने की भावना कभी कसी समस्या का समाधान नहीं बल्कि बुराईयों की लम्बी श्रृंखला का सूत्रपात है।

(२६०)

धन के सागर में डूबा हुआ व्यक्ति कभी–कभी मनुष्य के आकार में राक्षस बन जाता है। इतना क्रूर कि जंगली पशु भी शरमा जाएं।

(२६१)

सन्देह की दृष्टि मनुष्य को इतना पीडित कर देती है कि उसे सारे लोग चोर, बदमाश, लफंगे नजर लगते हैं। वह समझता है सब लोग उसी की बुराई कर रहे हैं। यह सोच ही उसे बुरा बना देती है और सचमुच लोग बुराई करने लगते हैं।

(२६२)

अध्ययन शील व्यक्ति ज्ञान के भंडार का अपने भीतर संचय करके त्रिकालज्ञ बनता है और बाहरी अनुभव से वह बुद्धिशाली बनता है। ग्राम्य वार्ता में समय खो देने वाला कौए की भांति काँए–काँए करता रहता है।

(२६३)

शारीरिक पराधीनता सबल आत्मा को क्षीण नहीं कर पाती। आत्मिक शक्तियों के उत्थान से मनुष्य इतना बलशाली बन जाता है कि शारीरिक बंधन निरर्थक हो जाते हैं।

(२६४)

अपना आचरण दूषित हो तो दूसरे लोग निंदा करेंगे ही। बुराईयों से यदि हम अपने आप को बचा लें, तो हम सद् विचारों की पुनरावृत्ति विचार को शक्ति देती है। ऐसे व्यक्ति के कथन का दूसरों पर प्रभाव होता है। अपने समक्ष निर्दोष, निर्मल रहेंगे। निन्दक कब तक सराहे जाएंगे ?

(२६५)

विचार अपनी धूम्र परिधि बना कर अपनी सुगंध स

सराबोर करता है। विचार व्यक्ति को याज्ञिक बनाता है। सद् विचारों का घनी–भूत होना व्यक्ति का आचरण भी बनाता है, और अभिव्यक्ति की भाषा भी पाता है।

(२६६)

"सतसंगति तरहि नर" लगातार सत संगति मनुष्य में अभूतपूर्व परिवर्तन लाती है। कहते हैं कि जंगल के पशु पक्षी भी ऐसे तपस्वी लोगों के प्रभाव में आकर अपने स्वभाव की बुराई त्याग देते हैं। विचारों का दोष सुन्दर से सुन्दर व्यक्ति को भी कुरूप बना देता है।

(२६७)

दूषित विचार वाला स्वार्थी व्यक्ति भले ही साधनों के उपयोग से परिस्थितियों को अपने अनुकूल बना ले। परन्तु सत्य सामने आते ही उसकी महानता का किरीट धूल–धूसरित हो जाता है और दुनिया उसकी दुर्दशा पर हंसती है।

(२६८)

सद् विचारों से ओतप्रोत व्यक्ति कुरूप भी हो तो उज्ज्वल आभा मंडल उसके चेहरे को सौम्य बना देता है। सद् विचारों की पुनरावृति विचार को शक्ति देती है। ऐसे व्यक्ति के कथन का दूसरों पर प्रभाव होता है।

(२६९)

मानव मन में ऐसी शक्ति है कि वह सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति के अन्तर को पढ़ सकता है। लेकिन सच्चा

साधु किसी बुरे की बुराई को जानना नहीं चाहता इससे उसकी अपनी साधना में खलल पड़ता है।

(२७०)

हर व्यक्ति अपने आप को सयाना समझता है। इसलिए दूसरों द्वारा दी गई चेतावनी को अनसुना कर देता है। हानि हो जाने पर ही होश में आता है।

(२७१)

प्रेयसी होकर प्रभु को पाना तो प्रेम और पावनता का उत्कृष्ट स्वरूप है। प्रभु के साषीष्य का सर्वोत्तम मार्ग। ऐसे प्रेमी भक्तों के मतवाले मन को वासना के काजल से आंजना नीच कर्म है। मीरा, राधा जैसी नारियों और चैतन्य जैसे प्रेमी भक्त ने प्रभु को इसी रूप में भजा और पाया उनमें कलुष कहां से आया ?

(२७२)

सारा समय यह जानने में खो दें कि किसने हमारी क्या निंदा की तो इससे क्या भला होगा। हां, अपने ही परिवेश में हम सब से वैर जरूर साध सकते हैं।

(२७३)

मजदूर से काम करवा कर यदि निर्धारित मजदूरी से थोड़ी अधिक दे देवें तो एक आन्तरिक आनन्द मिलेगा और मजदूर का हृदय मित्र का हृदय बन जाएगा।

(२७४)

दोस्त, दोस्त होता है। बनाया जाता है, स्वयं दोस्त का दोस्त बनके। लोग तो दुनिया में बहुत हैं बस दोस्त ही मिलना कठिन है।

(२७५)

अपने अपराधों का प्रायश्चित तो करना ही पड़ता है कई बार दूसरों के अपराधों का भी करना पड़ता है। स्वयं को दंड़ित भी करना पड़ता है ताकि दूसरे की आत्मा का कलुष बह जाए।

(२७६)

मनुष्य सोचता है मैं वायु में भी जो महल बनाऊं वह इतना मजबूत हो कि आने वाली हजारों सदियों में भी अड़िग रहे। परन्तु करने वाले ने यह व्यवस्था भी कर रक्खी है कि मजबूत, विशाल, कठोर पर्वत भी पल भर में चूर–चूर हो जाएं, फिर भी मूर्ख मन क्यों लगा रहता है जोड़–तोड़ करने में।

(२७७)

एक छोटी सी घटना, एक छोटा सा वाक्य मनुष्य के चरित्र को मूलतः प्रकट कर देता है। फिर भी व्यक्ति अपनी बुराईयां छुपाने और अच्छाईयां उजागर करने में अपना सारा श्रम लगा देता है।

(२७८)

चार व्यक्तियों के बैठने से आत्म उन्नति हो तो सत्संग और यदि निन्दा चुगली, गाली, गलौच, राग द्वेष हो तो कुसंग। सत्संग हो तो चलाए रक्खो, कुसंग हो तो वहीं पर समाप्त कर दो।

(२७६)

यह अस्थि विहिन वाणी कठोर से कठोर प्रहार कर सकती है। यदि अस्थि भी होती तो गज़ब ढाती।

(२८०)

जब हम आपस में एक दूसरे के विचारों का आदर नहीं कर पाते तो परस्पर प्रतिरोध होता है। ऐसे में मौन हो जाना ही श्रेष्ठ है।

(२८१)

मनुष्य स्वयं एक विस्तृत पुस्तक है। एक शोध ग्रंथ है। जो निरन्तर लिखा जाता है, निरन्तर पढ़ा जाता है। यदि हम मानवता का सृजनात्मक निबन्ध बन सकें तो क्या सन्देह है कि आने वाली पीढियां इन्हें शताब्दियों पढ़ती रहेंगी।

(२८२)

जो विलुप्त हो जाता है वह भी विलुप्त नहीं होता। काल चक्र कभी न कभी उसे प्रकट कर देता है। चाहे वह पुरातत्व का इतिहास बनकर ही अपनी कहानी अपनी जबानी कहे।

(२८३)

यदि इस संसार में कुछ सत्य नहीं है तो कुछ झूठ भी नहीं है। सत्य और झूठ के बीच की यह माया जब झूलती है तो कभी सत्य कभी झूठ लगने लगती है। तभी तो आज तक यह सारा संसार उस प्रभु की लीला को आश्चर्यवत् देखता है।

(२८४)

मृत्यु आए बिना मानती नहीं। जीव इसे हमेशा आगे–आगे धकेलना चाहता है। पर यह हमेशा पीछे–पीछे रहती है। इसी लिए आगे दीखने वाली मृग तृष्णा में जीव बहक जाता है। मृत्यु मौका पाते ही अपना पंजा जमा देती है।

(२८५)

युद्ध विभिषिका, खूनी दुर्गन्ध, नाश, महानाश हर पग पर मानव के आगे मुँह खोले उपस्थित है। इन्हीं की छाती पर उत्कीर्ण होती है पुनः नव सृष्टि। नव सौन्दर्य में मदमत्त प्राणी भूल जाता है विभिषिका को और फंसा रहता है सुख–दुःख के आवागमन में।

(२८६)

सच है समय पर विषय इन्द्रियों को त्याग देते हैं। परन्तु मनुष्य का मन यदि इन विषयों को त्यागने में पहल कर जाए तो फिर कहना ही क्या!! मन जैसे ही विषयों से खाली होगा, वैसे ही प्रभु का दरबार सजने लगेगा।

(२८७)

मित्रता के लिए बडे हुए हाथ को मित्रता ही देना। परन्तु देखना दूसरे हाथ में कहीं छुरा न छिपा हो। सावधान, मित्र होकर जो छुरा चलाए उससे पहले ही भेड़ की खाल में छिपे भेडिये की लीला समाप्त कर दो। जैसे शिवाजी ने अजमल खां की कर दी। यह नीति है।

(२८८)

आचरण ऐसा हो कि हम संसार में शत्रु नहीं मित्र पैदा कर सकें जो मित्र पैदा कर सकता है उसका राज्य लम्बे समय तक बना रहता है। क्रूरता अत्याचार द्वारा स्थापित साम्राज्य की जीवनावधि कम ही होती है क्योंकि ऐसा शासक अधिक से अधिक शत्रु अपने चारों ओर पैदा कर लेता है।

(२८९)

कभी–कभी हमारी सच्चाई और सत्याचरण को भी दूसरे लोग सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। हर बात का उल्टा अर्थ निकालते हैं। यहां तक कि अपने मन में संदेहों के कारण जान के ग्राहक भी बन जाते हैं। यदि हम सावधान नहीं तो अवश्य मारे जाएंगे।

(२६०)

नारी अनुपम रत्न है ऐसा कहा जाता है। रत्नों को तिजोरियों में सहेज कर रक्खा जाता है। नारी में नारीत्व की रक्षा के लिए पुरुष ने घर बनाए। उन घरों को स्वर्ग की तरह सजाया। नारी ने पुरुष को आराध्य माना तो पुरुष ने नारी को अद्भुत उपलब्धि। नारी ने समर्पण किया, पुरुष ने रक्षा का कवच पहना। नारी और पुरुष का यही स्वरूप आदिकाल से प्रचलित हुआ। परन्तु समय की परतों ने बहुत कुछ बदल डाला। बहुत कुद विकृत कर दिया। आज नारी के रूप भी अनन्त हैं और पुरुष की वितृष्णा भी असीम। जहां उन्हें एक दूसरे का पूरक होना चाहिए वहां वे द्वन्द्व में एक दूसरे के सामने भूखे भेड़िये की तरह खड़े हैं। ऐसे में नारी रत्न न रही, पुरुष आराध्य न रहा।

(२६१)

अपने मन के पाप कलुष से ही प्राणी भयभीत होता है। अपने भीतर के भय के कारण ही आक्रमण करता है ओर अपने कलुष से ही पराजित होता है। जिसका हृदय स्वच्छ हो वह निर्भय होता है। पराजित होकर भी अजय। जीवन में संघर्ष की शक्ति अंपने भीतर से प्राप्त होती है।

(२६२)

सुविधा–भोगी अधिक से अधिक धन अपने पर व्यय करता है। कम से कम मेहनत करना चाहता है। इच्छाओं का दास, इच्छा पूर्ति न होने पर क्रोध करता है।

सुविधाओं में जीकर भी सुखी नहीं हो सकता किन्तु अपने हर कष्ट के लिए दूसरों को दोषी ठहराता है।

(२६३)

रटे हुए सत्य से भोगा हुआ सत्य अधिक शक्तिशाली होता है। परिस्थितियों की कडुआहट का गरल पीने वाला मार्ग के अवरोधों का भी परिचय रखता है और उनसे त्राण पाने के सटीक मार्ग का निर्धारण भी ज्यादा बुद्धिमता से करने में सक्षम हो सकता है।

(२६४)

हिमालय की ऊंचाई का अनुमान अपने वातानुकूलित शयन कक्ष में लगाने से हिमालय नहीं मिलता। हिमालय की दुर्गम पगड़ण्ड़ियों पर बढने की पग क्षमता का अनुभव प्राप्त करने वाले को ही उसके सम्मुन्नत गौरव का ज्ञान और सामीप्य प्राप्त होता है।

(२६५)

यह संसार तो ऐसी तिलस्म है कि जो भी इसमें प्रवेश करता है उसे यह अपनी मृगतृष्णा में लुभा कर भटकाता है और अपनी भीषणता से डराता है। जो इसके इन दोनों रूपों को तटस्थता से कगार पर स्थित होकर निहार सकता है वह इस पर विजय प्राप्त करता है।

(२६६)

प्रातःकाल की यह मन्द मधुर समीर नभ की उचतम ऊंचाईयों से होकर मेरे तन तक जब पहुंचती है तो सारे

विश्व के साथ अपनी एकात्मता का मुझे बोध कराती है। तब इसकी गोद में स्थित मेरा हृदय किसी अलौकिक आनन्द में मग्न हुआ काल की अगम्यता में मुझे विहार कराता है।

(२६७)

गुणों को जोड़ने वाला स्वयं भी आनन्दित होता है और साथ में सब को भी आनन्दित करता है। विघटन करने वाला दूसरों को तोड़ता हुआ स्वयं टूट जाता है। फिर अपने बनाए अंधेरों में स्वयं कैद हो जाता है।

(२६८)

बड़ा तुच्छ या अदना प्राणी समझ कर जिसकी अवहेलना की जाती है। उसकी आत्मा जब 'त्राहि माम्', 'त्राहि माम्' करती हुई परमात्मा के न्यायालय में पहुंचती है तो शक्तिशाली का राज मुकुट उसके चरणों में लोट जाता है। मनुष्य के न्याय को महान् प्रभु के न्याय के आगे झुकना पड़ता है।

(२६९)

दूसरों के द्वारा अपने प्रति किए उपकार का एक-एक पैसा अभी इसी जन्म में चुका दो, नहीं चुकाया तो जगतनियन्ता के बैंक के हिसाब-किताब में तुम्हारे ऊपर कितना ही व्याज हो जाएगा और पाई-पाई करके चुकाना पड़ेगा।

(३००)

कितना श्रम करके, उतकोच दे–दे कर, करों से बचा–बचा कर यह सम्पदा का ऊंचा अम्बार जोड़ लिया। परन्तु जब उस स्वामी ने चाहा भूकम्प, बाढ, रोग, चोरी, डाका कुछ भी भेज दिया और अपना दिया सब वापिस ले लिया।

(३०१)

उठो रे मन, जागो रे नींद से, देखो यह समय का कभी न वापिस आने वाला चोर तुम्हारी सम्पदा हर क़र लिए जा रहा है। इसकी छाती पर अपने सद् विचार, सद् कर्म की सम्पदा का बोझ लाद दो। फिर यह चला भी जाएगा तो तुम्हारे लादे बोझ से उसका वह कोष हमेशा के लिए झुका रहेगा।

(३०२)

कौन बडा है ? घमंड में अकड कर चूर रहने वाला अत्याचारी! कभी नहीं, वह तो ऊंचाई पर केवल इसलिए बैठा है, कि जिस कुएं में उसे गिरना है उसकी ग़हराई और गहरी हो जाए। यह तिनका ही बड़ा है जिसके ऊपर से आंधी तुफान सब गुजर जाएंगे पर यह मुस्कराता रहेगा।

(३०३)

यह प्रतिष्ठा और धन की भूख इस संसार का निनानवें का चक्का है। इसे सौ तक पहुंचाने के लिए सब लोग

लगे हैं अपनी–अपनी तिकडम लडाने में। पर कोई विरला ही ऐसा है जो इस पर धूल डालकर अन्तर आत्मा के स्वच्छ धुले फूल पर सारा प्रपंच वार चुका हो।

(३०४)

एक परमब्रह्म में ही यह सारा ब्रह्माण्ड व्याप्त है। शून्यों की अनन्त राशियां इसके गिर्द काल की अनवरत गति में निरन्तर घूमती रहती हैं। विस्तार को प्राप्त होकर फिर विलय हो जाती हैं। परन्तु ब्रह्म एक एकाकी, निर्विकार, अक्षुण और सर्वदा सर्वत्र विद्यमान रहता है।

(३०५)

साधारण में असाधारण का जन्म सैंकडों में कोई एक होता है। जो संयम की सीमाओं में, बाधाओं की कसौटियों पर खरा उतर, प्रतिबन्धनों की परीक्षाओं को पार करके कुन्दन की तरह निखर कर, मुस्कराता हुआ, सूर्य के समान प्रभावान् होकर संसार के समक्ष सुशोभित होता है।

(३०६)

'धूल से सना चिथडों में लिपटा सा दिखने वाला कोई पागल है।' ऐसा मत सोचो। उसके भीतर चमचमाते हीरे की चमक हो सकती है। गंगा की पवित्रता लहरा सकती है; हिमालय का गौरव प्रतिष्ठित हो सकता है। तुम उसे अपनी गोद में ले लो, हो सकता वह कोई अनमोल निधि हो।

(३०७)

निराश हो गए! वह साधारण चुभने वाला कांच ही था। कोई बात नहीं! तुम्हारी सद्भावना और स्नेह की रगड से उसकी चुभने वाली नोक घिस जाएगी वह स्वयं कुछ भी हो, तुम्हें जगमगाता हुआ अनमोल रत्न बना सकता है। उसने तुम्हें सेवा का अवसर देकर मदर टेरेसा होने का गौरव दिया है।

(३०८)

झूठ का आकार चाहे हाथी की तरह विशाल हो, सत्य का आकार चाहे चींटी की तरह लघु हो। सत्य के सामने आते ही झूठ की काया कांपने लगती है। छोटा सा सत्य बहुत बड़े झूठ को पछाड़ सकता है।

(३०६)

दुष्टता, अत्याचार, आततायीपन अपने आतंक से विचार को कितना ही दबाएं, कत्ल करें, फांसी पर चढ़ाएँ, विचार जीवित रहता है, भले ही उसके अंकुर शरीर बदल लें पर वह बट वृक्ष बनने से रुक नहीं सकता।

(३१०)

दुर्विचार को सद् विचार से ही मारा जा सका है। दुर्विचार से दुर्विचार नहीं मरता वरन् और फलता फूलता है। सद् विचार की धरती भी ढक देता है। सद् विचार

न केवल दुर्विचार को समाप्त कर देता है, प्रत्युत सुख और आनन्द का सृजन भी करता है।

(३११)

"नैंन छिंदन्ति शस्त्राणि, नैंन दहति पावक"! यह कथन आत्मा के लिए है शरीर के लिएं नहीं। शीर में रह कर शरीर से ऊपर हो सकना सहज नहीं इसलिए शस्त्रों के काटने से पीड़ा होती है और आग के जलाने से दाह भी होता है। दुःख होता है तभी तो उससे छुटकारा दिलाने वाले मार्ग की खोज होती है। तभी तो शरीर से आत्मा की ओर का सफर शुरू होता है।

(३१२)

आकाश को आच्छादित करने वाले मेघ आकाश को जब मण्डित नहीं कर पाए तो आकाश पर थूकने वाला उसे क्या गन्दा करेगा। हाँ, थूक से उसका अपना मूंह जरूर गन्दा होगा।

(३१३)

शरीर के बिना आत्मा की कल्पना बिल्कुल सुन्दर नहीं है। शरीर में रह कर जो कार्य आत्मा सम्पन्न कर सकती है। वह अशरीरी रह कर कैसे करेगी। और फिर मानव शरीर, फिर मानवों में उत्तम कुल, उच्च वर्ग और दिव्य गुणों का संयोग। आत्मा भले ही अशरीरी कही जाए शरीर के बिना उसका ज्ञान भी किस अर्थ।

(३१४)

हीरा शरीर हो सकता है आत्मा नहीं । आत्मा तो हीरे का वह गुण है जिसके होने से हीरे को हीरा कहा जाता है। अन्यथा कांच का हर टुकडा ही हीरा क्यों नहीं कहा जाता।

(३१५)

नदी की धारा बह रही है। उसमें बह रहे हैं सुमन। मैं इन सुमनों को थाम लेने को हाथ बढ़ाती रहती हूँ। जो हाथ में आ जाते हैं उनकी ही यह माला गूंथ रही हूँ। सुमन अनगिण हैं, जो थोडे चुन पाती हूँ। उन्हीं की यह माला समर्पित है उन हजारों लाखों को, जो इन्हें प्राप्त करने के इच्छुक हैं।

(३१६)

एक अवगुण हजार गुणों पर पानी फेर देता है। एक गुण हजार अवगुणों पर पर्दा डाल देता है।

(३१७)

यदि कोई दोष है, तो निन्दा होगी ही, बुरा क्यों मनाएँ। दोष रहने पर निन्दा नहीं होती तो दोष छिपा–छिपा पलता रहेगा। यह तो सौभाग्य है दोष मिटाने को निन्दा होने दो, दोष दूर हो जाएंगे।

(३१८)

अपेक्षाएँ अधिक होने से चाहे कितने ही सुख प्राप्त हो कम ही प्रतीत होते हैं। अपेक्षाएँ न हों तो स्वल्प सा सुख बहुत बड़ा लगता है। अतः सुख और दुःख वस्तुओं में कहाँ है, वह तो व्यक्ति के अन्तर्मन की कृति ही अधिक है।

(३१६)

संसार के व्यवहार में वर्तते हुए जो सिद्धांत और विचार युक्ति संगत लगते हैं, उन्हीं का अनुमोदन करते हुए जब गीता इत्यादि ग्रंथों को पाया जाता है, तब लगता है कि मनन करने से भगवान अपने द्वारा प्रति पादित मार्ग स्वयं प्राणी के भीतर बैठकर उसे सुझाते हैं। अपने अन्तर की इस गुहार को सुनने का प्रयत्न हमें करना चाहिए।

(३२०)

परीक्षा अनायास ही चुपके से आ जाती है। अपना शरीर ही परीक्षा भवन बन जाता है। और यह सारे कष्ट प्रश्न पत्र बन कर खुल जाते हैं। अनायास ही लगता है किसी आनन्द भवन से आग की भट्ठी में छटपटाते हुए गिर गए हैं। साहस जवाब देने लगता है। तब लगता है संतुलन खो गए तो फेल हो जांएगे। सन्तुलन बना रख सके तो सारे प्रश्न धीरे–धीरे कहीं भी, कभी भी हम से

उत्तर की तलब करने लगते हैं इसलिए हर अवस्था में सन्नद्धता की अपेक्षा है।

(३२१)

प्रभु की कृपा दृष्टि न हो तो प्रभु भजन भी नहीं हो सकता। मेरा अभिमान एक क्षण में ही मिथ्या हो जाता है, जब उस जगदीश्वर की दृष्टि वक्र हो जाए। उसकी कृपा बरसे तो दुःखों के तिरोहित होने में एक क्षण भी नहीं लगता।

(३२२)

कोई बहुत कोमल है, लाडला है, भोला है या उच्चासन पर आसीन है। उस परम न्याय कर्त्ता को कोई फर्क नहीं पडता। उसका न्याय चक्र भेदभाव के बिना चलता है। साक्षी उसे चाहिए नहीं। सब के अच्छे बुरे का हिसाब तो वह बिना लगाए ही जान लेता है।

(३२३)

अपने–अपने अभिमान के नशे में चूर लोग दूसरों को अपने से घटिया सिद्ध करने में लगे हैं। परन्तु उनका अपना घटियापन यही है कि वह दूसरों का केवल घटियापन ही देख सके।

(३२४)

वर्षा की बहुत सीलन बन्द वस्तुओं में भी खुम्बें पैदा कर देती है। इसी तरह सांसारिकता का बहुत कोलाहल स्वार्थ भरी इच्छाओं की खुम्बें पैदा कर देता है। चिन्तन की धूप एकान्त में सेकें तो यह इच्छाओं की खुम्बें सूख कर गिरें।

(३२५)

कर्म करने से, कर्त्तव्य पालन से पीछे नहीं हटना, परन्तु दूसरों को निकम्मा भी मत बनने देना। संग चलो, मिलकर कर्म करो, इसी में सब की उन्नति का राज़ है।

(३२६)

झूठ को सहन करने वाला जीवन, मृत्यु से भी निकृष्ट है। अन्याय अत्याचार को सहते रहना भी कोई अक्लमंदी नहीं। मन में कलुष रखने से अच्छा है अन्याय अत्याचार के विरोध में खडे हो जाएँ।

(३२७)

आलस्य के कारण मनुष्य की गुण गरिमा का ह्रास होता रहता है। कर्म के द्वारा प्रतिपादित चरित्र अधिक ठोस और यथार्थ की धरा पर अवस्थित होता है। दूसरों को अपनी सेवार्थ अधीनस्थ बनाए रखने की प्रवृत्ति स्वार्थ का सोपान है।

(३२८)

अकर्मण्य कर्म का मोल नहीं जानता। कर्म शील ही कर्म का मोल जानता है। ईश्वर सब कर्मों से परे होते हुए भी सब कर्मों का कर्त्ता है। उसके अपने कर्म करने के ढंग ही निष्काम कर्मों की व्याख्या हैं।

(३२६)

कर्म की गति ऐसी है, कि वहां तर्क भी मौन हो जाता है। न्यायाधीश अपराधी और अपराधी न्यायाधीश बन जाता है। परहेज कार रोगी और पत्थर चबाने वाला निरोगी हो जाता है।

(३३०)

भोगों से शारीरिक आनन्द की कल्पना के कारण तुमने सोचा (कभी विषयों से विमुख नहीं होऊंगा) पर देखो, उस प्रभु का विधान कि उसने विषयों को ही तुमसे विमुख कर दिया और तुम देखते रह गए।

(३३१)

इतने काम हैं कि करते रहो समाप्त नहीं होते ! इन कामों को एक तरफ करके एकान्त कौने में बैठकर सोचो 'किस लिए आए ? क्या कर रहे हो ? जीवन का अंत क्या है ? क्या करना अभीष्ट है' ?

(३३२)

मनुष्य ने दिन भर खाते रहने के प्रोग्राम बनाए। उसके लिए ही निरन्तर प्रयत्न करता रहा, परन्तु कभी भी इस पेट की ज्वाला ने यह नहीं कहा कि अब खाना छोड दूँ। यह सब भोग तो तभी छूटते हैं जब शरीर जवाब दे देता है। तब भी मनुष्य को यह पश्चाताप लगा रहता है कि मैंने जी भर कर खाया नहीं।

(३३३)

बार–बार उन्हीं बातों की पुनरावृत्ति, बार–बार उन्हीं भोगों का प्रत्यावर्तन, मन है कि शहद पर मक्खी की तरह उन्हीं से चिपका रहता है और आयु के खंडित होते वृक्ष के गिर जाने का आभास भी नहीं कर पाता। अन्त में सिवाय पश्चाताप के कुछ हाथ नहीं आता।

(३३४)

विचार अध्ययन द्वारा निर्मित होते हैं। अनुभव उन्हें परिपक्व करता है और निरन्तरता से वह शाश्वतता को प्राप्त होते हैं।

(३३५)

सामान बंध चुका है शहर–शहर घूमने का एक और कांड समाप्त हो रहा है। नयी मंजिल पर क्या प्राप्त होगा कौन जाने, फिर भी गति की अक्षुण्यता और निरन्तरता बनी रहे, यह इच्छा सदैव जागृत रहती है।

(३३६)

कामान्ध, स्वार्थान्ध, अपने उद्देश्य के लिए उचित अनुचित का अनुमान लगाए बिना की क्रियाशील हो जाता है। ऐसे में वह दूसरों द्वारा दी गई अच्छी सीख सुनने की मनःस्थिति में नहीं होता। परिणाम स्वरूप पाए कष्ट दायक फल जब पीड़ा देने लगें, तब भी यदि अंध बुद्धि बना दूसरों को, ईश्वर को दोष देता रहे तो ऐसे प्राणी के लिए आत्मोन्नति का द्वार फिर कब खुलेगा !

(३३७)

न जाने कब, कैसे, कहां से यह घमंड व्यक्ति के भीतर प्रवेश कर जाता है, बुद्धि विनाश कर देता है और तब वह अपने आप को कष्ट सागर में स्वयं ही धकेल देता है। फिर एक लम्बे कर्मभोग चक्र की गति के आवर्त्त में फंस जाता है। कब ईश्वर कृपा हो, कब यहां से निकलें, कोई ठिकाना नहीं।

(३३८)

नैसर्गिक सत्य है कि पुरूष को नारी से उत्तम समझा जाता है। नारी में सहनशीलता है, उसे सहारे की आवश्यकता होती है। इसलिए पति—पत्नि पर हावी होता है। पुरूष यदि स्त्रियोचित गुण धारण करे तो उसे अपना मान घटता दृष्टिगोचर होता है। परन्तु जब स्त्री पुरूषोचित गुण धारण करती है, तो वह वीरांगना बन जाती है। भारत में ऐसी वीर नारियों में शिरोमणि थी, झांसी की रानी और आधुनिक भारत में श्रीमती इंदिरा गांधी।

(३३६)

वाक् युद्ध में प्रवीण स्त्रियां सब फसादों की जड़ बन जाती हैं। पति का विश्वास भी खो देती हैं। नारी की योग्यता तो इसमें है कि बिना चोट किए ही दूसरों को अपने अनुकूल बना सके। यह मार्ग लम्बा और परिश्रम का है परन्तु सौम्य है और यदि परिवार के हित में प्रयास हों तो घर स्वर्ग बन जाता है।

(३४०)

भगवान की शक्ति के आगे कुछ भी असम्भव नहीं जो कभी नहीं हुआ वह भी कर सकने की उसकी क्षमता है। बशर्ते हमारे में इतना दृढ़ विश्वास हो। विश्वास की दृढ़ता का ही अभाव सबसे बड़ी कठिनाई है। इसी की कमी के कारण हम रात दिन अनवरत चिन्ता में घुले जा रहे हैं, मरे जा रहे हैं।

(३४१)

जैसे एक–एक ईंट जोडने से महल बन जाता है, वैसे ही एक–एक क्षण में जो भी कार्य हम मनसा, वाचा, कर्मणा करते चले जाते हैं वही हमारे चरित्र की इमारत तैयार करते हैं। मनुष्य की अस्मिता उसके विचारों से है और कर्म विचारों का दर्पण। देखें तो, हमने अपनी तस्वीर कितनी सुन्दर बनाई !

(३४२)

जो कुछ भी हम करते हैं, उसका सुक्ष्म आकार हमारे भावों में एकत्र हो जाता है। धनी–भूत होते–होते इतना

प्रभावशाली बन जाता है कि उससे अलग हमारी क्या पहचान ! मृत्यु के समय वही हमारे मन मस्तिष्क पर छाया रहेगा। फिर यह सोचना कि राम भजन बुढ़ापे में कर लेंगे, एक कोरी सांत्वना है।

(३४३)

चंचलता वश जो व्यक्ति सभी की नकल अपने में उतार लेने के प्रयत्न करता है, वह हमेशा अशान्त, असंतुष्ट, चिड़चिड़ा बना रहता है। उसकी आस्थाएं बदलती रहती हैं। वह बहुत कुछ बन जाने की प्रतिक्रिया में कुछ भी नहीं बन पाता।

(३४४)

अपनी आवश्यकताओं के प्रति संतुष्ट और अपनी प्रगति के प्रति असंतुष्ट, व्यक्ति शांत प्रकृति को भी प्राप्त करता है तथा उन्नति के प्रति सजग भी रहता है। शारीरिक सुख प्राप्त करने में निरन्तर लगे रहनें पर सुख आकाश—कुसुम हो जाते हैं और व्यक्ति लड़ता झगड़ता रहता है।

(३४५)

जो मस्तिष्क दार्शनिक विचारों में विचरण करते रहते हैं, उन्हें छोटे—छोटे राग द्वेषों का भान नहीं हो पाता। क्योंकि दृष्टिगोचर होने वाले पदार्थों को भी देखने का उनका दृष्टि कोण साधारण लोगों से अलग होता है। लोग ऐसे लोगों को सनकी कहते हैं पर वह गहन विचारों के प्रणेता होते हैं।

(३४६)

निष्ठा मनुष्य के अपने हृदय की आवाज है। कर्त्तव्य बाहरी परिस्थितियों से रूप धारण करता है। जहां कर्त्तव्य और निष्ठा के बीच द्वन्द्व उत्पन्न हो जाता है। वहां निष्ठा को कर्त्तव्य से नहीं, प्रत्युत कर्त्तव्य को निष्ठा से जोड़ा जाता है। कर्त्तव्य सार्वभौम होकर मनुष्य से बलिदान मांगता है, निष्ठा बलिदान को बल देती है।

(३४७)

ईश्वर एक है परन्तु एकत्व में अनेकत्व की माया का प्रसार भासता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर के ईश्वर को निजी मानता है। सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त ईश्वर की उपासना अपने भीतर के एकाकी, लघुतम ईश्वर से ही प्रारम्भ होती है।

(३४८)

माया से बहुत सारे झमेले उत्पन्न होते हैं और निरन्तर होते ही चले जा रहे हैं। परन्तु मनुष्य के लिए ईश्वर ही एक ऐसा झमेला हो गया है कि जिसके नाम पर जंगें लड़ी जाती हैं, ग्रंथों पर ग्रंथ लिखे जाते हैं और वह स्वयं सारे झमेलों से निर्लिप्त दूर खडा मुस्कराता रहता है।

(३४६)

जिस परिवेश की कमियों, कमजोरियों और बुराईयों का ध्यान रख कर, विवेक पूर्वक उसमें प्रवेश किया जाता है, विवेक पूर्वक रहा जाता है, विवेक से व्यवहार किया

जाता है, उस परिवेश में रहते हुए भी व्यक्ति अपने को अलग रख कर जीवन ठीक चला सका है, विवेक को जगाए रखकर।

(३५०)

अब यह गाड़ी एक ऐसे स्टेशन पर आ गई है जिसमें बहुत कोलाहल है। देखना, इस कोलाहल में खो मत जाना, गाड़ियों की भीड़ में घबरा मत जाना। जो गन्तव्य जानते हैं, वह अपने कदम बढाते ही रहते हैं, उन्हें देखो और तुम भी चलो।

(३५१)

मृत्यु के कितने लम्बे हाथ हैं। भूकम्प ऊंचे-ऊंचे मजबूत महलों को धराशायी कर देते हैं। बाढ मजबूत किलों में घुसकर तांडव करने लगती है। तूफान क्या-क्या कुछ उडा के नहीं ले जाता। भोली भाली नदियां काली मां की जिह्वा बन जाती हैं। महलों के सात पर्दों के भीतर भी क्यों न जी रहा हो कोई अनमोल राज कुमार, मृत्यु यदि आ जाती है तो चुपके से उठा ले जाती है। मृत्यु से कौन बलवान है।

(३५२)

अनजाने में कभी कोई अपराध हो गया संसार भले ही क्षमा न करें, बड़े से बड़े अपराधी को भी क्षमा कर देने का गौरव उस जगद् नियन्ता को है। संसारी अपराधी को कड़े से कड़ा दंड दे, वह अपनी शरण में आने वाले को कब और कैसे क्षमा कर देता है पता ही नहीं चलता। न्याय कारी होते हुए भी कितना दयालु है वह प्रभु ! मृत्यु से बड़ा बस वही है।

(३५३)

जिसको संसार ठुकरा देता है उसे वह अपना लेता है। चुपके से गोद में लेकर अपने सिंहासन पर बिठा देता है। बस आवश्यकता है केवल सच्चे हृदय से उसे पुकार लेने की। जो उसका हो गया, उसे संसार की आवश्यकता नहीं, हां अब संसार को उसकी आवश्यकता है।

(३५४)

इतना मत फूलो गौरव में,
धरती पर पांव न टिक पायें,
उत्कर्ष में मत खोना इतना
कि आत्मबोध विस्मृत हो जाए,
कीर्ति ध्वज जब फहराए गगन में
दृष्टि धरती पर ही रखना,
मत त्याग तुला, मत कर घमंड
गौरव सौरभ अक्षुण रखना।

(३५५)

प्रतिभा प्रतिष्ठा से प्रति फलित होती है। जिम्मेदारी का बोझ व्यक्ति को जागरूक बना देता है। प्रतिष्ठा के बिना प्रतिभा, खदान में पड़े दबे जवाहरात की तरह व्यर्थ रहती है। प्रतिष्ठा की आभा से प्रतिभा में जो चमक आती है वह अपने लिए भी और संसार के लिए भी उपयोगी ही है।

(३५६)

नये विचार, नयी कल्पना, नव जागरण केवल इसलिए ही प्रकाश में आने को उतावले नहीं होते कि उससे कीर्ति

प्राप्त होती है बल्कि कीर्ति से पहले तो मानव कल्याण के लिए ही उनका उपयोग करने की भावना प्रबल होती है। कीर्ति तो स्वयं की कल्याण का पीछा करते—करते आ जाती है।

(३५७)

जो कर्म केवल कीर्ति के लिए किए जाते हैं उनमें कल्याण की भावना कम, दिखावे की अधिक होती है अतः उन कर्मों में मनुष्य की अन्तरतम भावनाओं की प्रबलता का समावेश विलुप्त होने से कीर्ति की आयु भी लघु होती है।

(३५८)

कर्म कांड के लम्बे चौड़े झमेलों में फंसा व्यक्ति सारा समय विधि—निषेध की लम्बी यात्रा में खो देता है। अपनी डोर भगवान के हाथों में देकर जप में मन लगा, ध्यान में अवस्थित हो, उपासना से सब देवता अनुकूल हो जाते हैं और फिर बहुत सा समय दूसरों की भलाई सोचने और करने के लिए भी मिल जाता है। मन भी हल्का रहता है।

(३५६)

कर्म में निष्काम भावना का उद्‌बोधन करने के लिए भगवान की उपासना और यज्ञ से स्थित—प्रज्ञता प्राप्त करने की आवश्यकता होती है। प्रातः समय सन्धयोपासना में चित्त लगाने से जिस शक्ति का संचार होता है, वह शेष दिन चर्या में मन मस्तिष्क को भटकने से बचा लेती है और सब कार्यों में ईश स्मरण होते रहने से कर्म स्वतः ही निष्काम होते चले जाते हैं।

(३६०)

जब हम यह सोचते हैं कि अमुक कार्य के लिए समय नहीं मिला तो यह पूर्ण सत्य नहीं होता। समय तो वही हैं। उसे अन्य–अन्य कार्यों में खर्च कर दिया जाता है। मनोरंज़न में, व्यर्थ की बातों में लगा दिया जाता है। जिस काम को हम टालते हैं उसमें मन नहीं लगता, वृत्ति नहीं रहती, कठिन प्रतीत होने लगता है। इसी तरह टलता रहता है। कई बार अपनी इसी आलस्य भरी आदत के कारण हम बडे महत्वपूर्ण कार्यों को क्रियान्वित नहीं करते। कई बार इसी तरह रोग का समय पर निदान नहीं हो पाता और जो जीवन बचाया जा सकता है वह व्यर्थ में नष्ट हो जाता है।

(३६१)

मनुष्य अपनी मान्यताओं का पुंज होता है। नैसर्गिक ढंग से वह उनके अनुसार ही प्रवृत्त रहता है। यही कारण है कि उसके कर्मों में दूसरों को भले ही दोष दृष्टि गोचर हों उसे स्वयं नहीं होते। जब होते हैं तब कोई आश्चर्य नहीं कि उसमें कोई अभूतपूर्व परिवर्तन आ जाए और वह अपनी मान्यताएं बदल दें।

(३६२)

विधि निषेध बढ़ते–बढ़ते इस सीमा तक बढ़ जाते हैं कि व्यक्ति को वहमी, भीरू बना देते हैं। ऐसी स्थिति में व्यक्ति अक्सर दूःस्थिति में फंस जाता है। पाखंडी ठग कर ले जाते हैं। होश आने तक लूटने वाला जा चुका

होता है। वहमी और भीरू अपनी मूर्खता पर मन मसोस कर रह जाता है।

(३६३)

विश्वास पूर्वक जिस मुहूर्त में अभी जो काम करेंगे वे सफल होंगे। मन में संकल्प आते ही काम में जुट जाना सब से उत्तम मुहूर्त है। अविश्वासी ज्योतिषियों, पंडितों के चक्कर लगाता रहना है, शगुन मनाता रहता है, फिर भी जरूरी नहीं कि काम हो ही जाए।

(३६४)

पड़ोस बुरा है, सुधर नहीं सकता, भलाई में भी बुराई ही देखना है। लड़ाई के नये–नये बहाने खोजता है। तो या तो पड़ोस बदल लो या पडोस से दोस्ती–दुश्मनी दोनों छोड दो। गाली अनसुनी कर दो, अकेला उबल–उबल कर शांत हो जाएगा।

(३६५)

इस दुनिया में रहने को घर कितना भी बडा हो जीने का रास्ता बडा संकरा है। हर तरफ वर्जनाओं, संदेहों, आशंकाओं, कर्त्तव्यों, रीति–रिवाजों, विधि निषेधों और मजबूरियों के ताबूत खडे हैं। हर पल कहीं न कहीं टकरा जाने की संभावना है। इन सारी सम्भावनाओं के बीच बच–बच कर चलने के लिए कितनी सावधानी की आवश्यकता है। तिस पर भी जिन्दगी का ज़हर मुस्करा कर पीने का आदेश है।

(३६६)

इस जिह्वा को दो द्वारों से बांध कर अंदर रक्खा गया है। यदि यह अहित कर वचन बोलने को उद्दत हो तो यह

दोनों द्वार जोर से भींच लेना चाहिए। अन्यथा इसके छोड़े शब्द वाणों से बड़े–बड़े महाभारत घट जाने का भय बना रहता है।

(३६७)

पुरीष की गन्दगी से आसपास दूर–दूर तक भारी दुर्गन्ध फैल जाती है। कीड़े मक्खियाँ बीमारी के किटाणु फैला कर रोग उत्पन्न कर देते हैं। इसी पुरीष को धरती के नीचे दबा दो तो गन्दगी दुर्गन्ध और रोग के किटाणु सभी से त्राण मिल जाता है। धरती के नीचे दबा पुरीष भी कुछ दिनों में मट्टी में परिवर्तित हो जाता है। राग द्वेष से भरे वातावरण में जीने वाला प्राणी दूषित भावनाओं से अछूता नहीं रह सकता। कुप्रभाव के कारण वह भी वैसा ही हो जाता है इसलिये सच्चा सन्यासी मनुष्यों से नहीं, राग द्वेष से भाग कर बनों, जंगलों की खाक छानता है शीतल जल के कल–कल बहते झरनों और निर्मल वातावरण में मन का कलुष साफ करता है। इस कलुष को धोये बिना मन का अभिषेक नहीं होता, न ही शांति मिलती है।

(३६८)

राग द्वेष का मल दबा कर रखने से वह भीतर ही भीतर उग्र होता रहता है। स्थान, समय, सम्बन्ध की प्रवाह न करके व्यक्ति ज्वालामुखी हो जाता है। इसलिए राग द्वेष को दबा कर नहीं रखना है उखाड कर फैंक देना है। तभी इस संक्रामक रोग से बचा जा सकता है।

(३६६)

मनुष्य में गुण स्वभाविक है, यदि हम अपनी गलतियों, भूलों को ठीक करना चाहें तो उन्हें न छूपाएं। अपना गुण गौरव गाते रहने से गुण घट जाते हैं, दूसरों के गुणों का

बखान करने से वह गुण हमें प्राप्त होते हैं। दूसरों की निन्दा करने से हम सारा कलुष अपने में लपेट लेते हैं। अपनी कमजोरियों और दूसरों के गुणों को ही विचारें, तो अच्छा है।

(३७०)

आलसी व्यक्ति दूसरों को अपने प्रति लापरवाह बना लेता है। बे मतलब बोलने वाला आदर का पात्र नहीं होता। ज्यादा मीन मेख निकालने वाला उपेक्षा का पात्र होता है। बहुत उपदेश देने वाले को लोग उसकी कथनी की कसौटी पर कसते हैं। हर समय झिड़कियां खाने वाला ढीठ हो जाता है।

(३७१)

मालिक और नौकर के बीच कुछ अन्तर न रहे तो नौकर मालिक की इज्जत नहीं करता न ही कहना मानता है। समाजवाद यह नहीं कहता कि हाथी को चींटी और चींटी को हाथी का खाना खिलाया जाए, अलबत्ता गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार काम और न्याय की प्राप्ति यह नियम होना चाहिए अनुशासन हीनता नहीं।

(३७२)

कुछ कुँएं बहुत गहरे होते हैं। परन्तु मीठा ठण्डा जल, पीने वाले हर व्यक्ति को सन्तुष्ट कर देता है। कुछ कुँएं होते हैं उन में जल डालते जाओ फिर भी सूखे। कुछ चार हाथ खुदाई करने पर ही पानी उघल देते हैं, पर बरसात ज़रा न हूई तो सूख भी जाते हैं। मनुष्यों का स्वभाव भी ऐसा होता है, कुछ बहुत गम्भीर, परन्तु परोकारी, कुछ महां लालची और कृपण और कुछ अति व्यवहारी इस हाथ लो उस हाथ दो।

(३७३)

एकान्त में संचित किए विचारों की परीक्षा भीड़ में जाकर होती है। "आधार की उपस्थिति के बिना मनोवेगों को वश में कर लिया है", ऐसा समझना भूल होगी। कारण होते हुए भी कोध न आए तो संयम, प्रलोभन होते हुए लालच न आए तो संयम, कामिनी पाकर भी काम न सताए तो संयम, मोह का आधार होते हुए भी मन निर्विकार हे तो संयम अन्यथा सब कोरा शाब्दिक ज्ञान।

(३७४)

सादगी से प्यार है इस लिए भारत में पैदा हुए। ईश्वर से प्यार है इसलिए वैदिक संस्कृति का अमर कोष विरासत में मिला। प्रकृति के कण कण में देवत्व का आभास है इसलिए महापुरूषों को नमन है। सारी धरा ईश्वर का घर है इसलिए जहाँ भी देखो उसी के दर्शन हैं।

(३७५)

मन सरल हो तो जीने का बड़ा आनन्द आता है। दूनियां को बदलने का दम भरने से क्या लाभ, दुनियां तो वैसे ही चलती है, बदल तो हम अपने आप को सकते हैं। मैं बुराई में न फसूँ यह भाव सन्तोष देता है ।

(३७६)

जब आदमी स्थुल होता है तो सूक्ष्म की कल्पना करके सूक्ष्म का अन्वेषण करता है । जब जीवात्मा सूक्ष्म को प्राप्त होता है

तब स्थुल की ओर आकर्षित होता होगा। किसी न किसी स्थूल माध्यम से अपने आप को व्यक्त करता होगा। आत्म अभिव्यक्ति की भावना स्थुल या सूक्ष्म दोनों अवस्थाओं में बनी रहती है, ऐसा लगता है। यदि भावना नष्ट हो जाए तो विकास और ह्रास का क्रम भी समाप्त हे जाए। वेशक ईश्वरीय शक्ति के कारण ही यह संभव है, लेकिन जीवात्मा का अपना प्रयत्न भी सच मुच साथ होता है, जिससे बार बार नये नये शरीर धारण कर लेता है।

(३७७)

बिना मांगे धन का दान सुगमता से नहीं दिया जाता है । सुगमता से लिया जा सकता है । नेक परामर्श बिना माँगे भी सुगमता से दिया जा सकता है परन्तु ग्रहण नहीं किया जा सकता । अतः जानते हुए भी कि कोई व्यक्ति अपना अहित कर रहा है बिना माँगे उसे नेक सलाह देना भी उपयुक्त नहीं होता।

(३७८)

यूँ तो सब लोगों से मिलना, व्यवहार करना, सुख दुःख बाँटना, हित चाहना होना ही चाहिए परन्तु सच्चे अर्थों में हित चाहने वाला लोखों में एक होता है। सही मित्रता के अभाव के कारण ही बहुत से कष्ट उत्पन्न होते हैं। अशान्ति बनी रहती है। भगवान की कल्पनाओं को कितना ही झुठलाओ सच्चे मित्र की तालाश हर प्राणी को उसकी ओर आकृष्ट करती है।

(३७६)

यह संसार तो दुःखों का घर है। जब बड़े कम्पा देने वाले कष्ट आ जाते हैं, तो "ईश्वर" जो मनुष्य के बिल्कुल ही पास है, कष्ट मिटाता है।

(३८०)

जब तक लड़ाई झगड़े कर अधिकारों के नारे लगाते रहे, दूसरा पक्ष प्रिय होने पर भी प्रतिवादी की तरह अड़ा रहा। जब सब परवाह छोड़ लड़ने से इन्कार कर दिया तो प्रतिवादी स्वयं ही झुका चला आया। फिर काहे का झगड़ा, काहे की रार।

(३८१)

जड़ता को प्राप्त व्यक्ति में प्रेम का भी अभाव हो जाता है। स्वभाविक रूप से जो कार्य व्यक्ति सहज में करता है, विघ्न आने से, प्रतारणा से, टोका टाकी से वह ऐसा जड़ होता है कि कुछ नहीं कर पाता। फिर सहज होने में समय लगता है। इसलिए हर व्यक्ति को प्रकृति के अनुसार कर्म में आगे बढ़ने का अवसर मिलना ही चाहिए।

(३८२)

आदर्श और सत्य के मार्ग के नियम उपनियम कहने में बहुत संक्षिप्त और सीधे लगते हैं। परन्तु जब आचरण का समय आता है, तो छोटी से छोटी बात भी बड़ी विषम लगती है। एक पग बढ़ना भी पर्वत पार करने जैसा लगता है। बहुत सी जटिलताएँ उपस्थित हो जाती हैं। इन जटिलताएँ में से निकलने पर लगता है कितनी बड़ी विजय पाई। जब कि दूसरों द्वारा बड़े से बड़ा कार्य होने पर भी छोटा ही लगता है। जो स्वयं इस भट्टी से तप कर निकलता है, वह दूसरों की भी कदर करता है।

(३८३)

मनुष्य स्वाद का मारा मर जाता है, स्वाद के लिए हिंसा करता है, लालच करता है, क्रोध करता है, झगड़ा करता है, झूठ बोलता है, पाप रत होता है और स्वजनों से शत्रुता तक मोल लेता है । स्वाद से अपने को बचाने का प्रयत्न, अच्छाई की ओर कदम बढ़ाना है ।

(३८४)

पर्वतों के शिखर सम्मुन्नत भाल लेकर एक दूसरें के सामने अपने अपने गौरव में समुपस्थित रहते हैं । सदियों इसी तरह रहते हैं । कभी आपस में गले नहीं मिल सकते । यह शिखर मिलने का प्रयास करें तो भूकम्प आ जाते हैं । मिलने से पहले ही यह शिखर चूर चूर हो जाते हैं। अपने अपने अभिमान में मानव भी एक दूसरे से दूर बने रहते हैं। अभिमान का त्याग उस नदी के जल की तरह हैं तो पर्वत के हृदय से निकल विनम्रता से बहने लगता है। उत्साह से त्वरित चलता है। सैकड़ों हजारों नदी नालों से गले मिलता है, उन्हें अपना बनाता, घर घर में कल्याण का बिगुल बजाता चलता है। सुखद सुन्दर और कल्याण कारी गति का जीवन बना लेता है। ऐसा ही जल में जल की तरह मानव का जीवन, समरस होना ही मानवता का अमृत है।

(३८५)

उत्तेजना में कोई उपदेश सुनाई नहीं देता , कोई पाठ समझ नहीं आता, मनुष्य विवेक शुन्य हो जाता है, नहीं करने योग्य

कार्य कर गुज़रता है। होश आने पर पश्चाताप होता है, तब आत्मग्लनि से मनुष्य तार–तार हो जाता है। इसी लिए हज़ार पाठ पढ़ने की जगह अनुभव की पाठशाला में उत्तेजना हीन होकर बैठना चाहिए।

(३८६)

वेद, ज्ञान के ग्रन्थों में सर्वोपरि है, सब ज्ञान का उत्स है। परन्तु वेद ही ऐसा कहते हैं कि तप, ध्यान, साधना को बिना आचरण में लाए वेद पढ़ कर भी कुछ कल्याण नहीं होगा। "क्रोध न करो" का पाठ पढ़कर युधिष्ठर तक तक कहते रहे "मुझे पाठ याद नहीं हुआ" जब तक उन्हें यह विश्वास न हो गया कि अब वे किसी स्थिति में क्रोध नहीं करेंगे।

(३८७)

आयुर्वेद में ज़हर को मारा जाता है तो ज़हर असाध्य रोगों की अचूक दवा बन जाता है । अवश्य ही हारे अवगुणों के विषों को भी मार डालने से जीवनोपयागी औषध बन जाते होंगे । तब वेद कहता है "मन्युरसि मन्यु मयि देहि" तो वह क्रोध को सात्विक स्वरूप प्रदान करता है। क्योंकि मानवता के कल्याण के लिए किया क्रोध, ज़हर नहीं, अमृत बन जाता है ।

(३८८)

मन्त्र सिद्धि के लिए मन्त्र का निरन्तर चिन्तन ही मन्त्र को जगाता है। हम अपने चिन्तन में व्यर्थ की बातों का चिन्तन,

उचारण और मनन करते है तो व्यर्थ की बातें ही हमारे व्यक्तित्व का हिस्सा बन जाती हैं। मन्त्र सिर के ऊपर से गुजर जाता है यदि मन्त्र चले तो व्यर्थ की बातें सिर के ऊपर से गुजर जाएंगी। तब मन्त्र शक्ति बनेगा ।

(३८६)

मनुष्य मनुष्य के साथ रहने में कठिनाई प्रतीत करता है, परन्तु पशु के साथ सहज ही रह लेता है। क्योंकि मनुष्य सन्देहशील है, दूराव करता है, ऊपर से मित्र सा दीख कर भीतर से कैसा है, जानना कठिन है। परन्तु पशु तो खूँखार से खूँखार भी हो तो प्यार की भाषा को बड़ी अच्छी तरह से समझ लेता है और अपने स्वामी के लिए समर्पित हो जाता है ।

(३६०)

निर्धन का स्वार्थ लघु है, इसलिए बहुत से निर्धन इकठ्ठे मिल कर गुज़र कर लेते है । धनी का स्वार्थ वृहत्तस्वरूप धारण करता जाता है, जिससे ज्यादा सन्देहशील होता जाता है। इसलिए धनवान इकठ्ठे नहीं रह सकते ।

(३६१)

सुशिक्षा, सद्विचार, सद्व्यवहार, सत्याचारण के बिना मनुष्य में अवगुण पशुओं से भी अधिक है। ऐसे मनुष्यों से, जो अपने को सुसंस्कृत बनाना ही नहीं चाहते, पशु ही अच्छे हैं।

(३६२)

चिन्तन सुधा में मैं ने जो भी लिखा, इसका उद्धेश्य है अपने मन को समझाना, सीधा सपाट सरल मार्ग अपना कर अपने पथ पर सुदढ़ होने के लिए शक्ति बटोरना। यदि मेरा मन शुद्ध हो गया तो मेरा कल्याण होगा और अवश्य ऐसा करने से दूसरों का भी कल्याण होगा।

(३६३)

"राम एक तापस तियतारी, नाम कोटि खल कुमति निवारी"। एक शुभ कर्म भी कितना महत्वपूर्ण है। एक अच्छा आदर्श सहस्त्रों करोड़ों लोगों के लिए प्रेरणा का स्रोत बन जाता है। भगवान् राम के जीवन का हर कार्य मानव को मर्यादा में बान्ध देता है, सत्य का पथ प्रशस्त करता है, त्याग और प्रेम के बन्धन में बान्धता है।

(३६४)

स्वाध्याय की टकोर न लगती रहे तो कौन, कब, कैसे राग द्वेष की कींच में गिर जाए, फिर बिना हरि कृपा उस कीच से उद्धार कैसे हो ? फिसलना आसान है पर पुनः स्वस्थ होने के लिए परिश्रम की आवश्यकता है।

(३६५)

"हे प्रभु, मेरे विचार शुद्ध हों, मेरे कर्म शुद्ध हों, मेरा आचरण शुद्ध हो, "प्रार्थना जब ह्रदय से निकलती है तो उस क्षण लगता है, कहते कहते ही सब कुछ शुद्ध हो गया। प्रातः काल उठते ही

इन विचारों को मन में घुमाना शुरू कर दें तो सारी दिन चर्चा अच्छी होगी और मन हलका हो जाएगा।

(३६६)

जटिल समस्यायों से मुक्ति की इच्छा से अविभूत मानव आत्मा हत्या कर लेता है। मुक्ति की इच्छा बड़ी बलवती होती है। यह बात अलग है कि विचार और मनन से मुक्ति के अर्थ ज्ञानी के लिए बदल जाते हैं। "फिर वह अज्ञानता वश आत्महत्या नहीं करता, वरन् अपने आप को तपश्चर्या में डाल कर इतना तपा लेता है कि शरीर के रहने अथवा न रहने से आत्मा की मुक्ताबस्था में उसे अन्तर नहीं लगता। शरीर के रहते, शारीरिक धर्म के बन्धन तो रहते हैं, परन्तु आत्मा अपने में अवस्थित हो जाती है।

(३६७)

ज़हर को ज़हर काटता है, लोहे से लोहा कटता है, मैल को मैल काटती है परन्तु आदमी सभी को काट लेता है ।

(३६८)

बदी को नेकी से जीता जाता है, क्रोध को शान्ति से, मोह को उदारता से, अहंकार को विनय से, शत्रुभाव को मित्रभाव से जीता जाता है, परन्तु उदण्डता को जीतने के लिए प्रताड़ना या दण्ड ही उपयुक्त है ।

(३६६)

जो मन का बादशाह है उसके पास धन हो, जरूरी नहीं, जो

मन का निर्धन है उसकी तिजौरी चाहे अशर्फियों से भरी हो। ऐसा निर्धन कभी धनवान नहीं बनता ।

(४००)

कभी–कभी व्यक्ति इतना अच्छा कर गुजरता है कि जिसकी उसे स्वयं अपने से भी आशा नहीं होती । कभी–कभी कुछ ऐसी गल्ती कर देता है कि लाख सिर पटखने पर भी बिगड़ी को सुधारा नहीं जा सकता। बस पश्चाताप करता है और भाग्य को कोसता है ।

(४०१)

मानव मन में विचारों का सागर लहराता रहता है, धारा प्रवाह चलता है, जैसे धारा के प्रवाह में कई प्रकार के जीव, जन्तु, पेड़ पौधे, मछलियां, मगरमच्छ, कछुए, शंख, सीपी, मोती, खनिज, औषधियां वर्तमान रहती हैं, ऐसे ही मानव मन भी विचारों की बाढ़ से ओतप्रोत रहता है। गति के कारण कभी कोई, कभी कोई गुण प्रधान हो जाता है। धारा के बाहरी आयाम से कई प्रकार के आघात, वर्षा, आतप, आन्धी, तुफान उद्धेलित करते हैं। उन सब थपेड़ों को सह कर धारा में कई प्रकार के आवर्त आते हैं। कभी सागर का जल तीन तीन मंजिल ऊँचा उठ जाता है, कभी लहरें चंचलता से खेलती नज़र आती हैं, कभी सागर इतना शान्त हो जाता है। मन में भी ऐसी अवस्थाऐं आती हैं। इस सारे कोलाहल, उथल पुथल चीतकार में मन को यह सीखने में ही युग बीत जाते हैं, कि कैसे इन सब अवस्थाओं में अपने आपको अन्दोलन रहित बना सकें। जो उद्धेलित नहीं होता वह ब्रह्म के समकक्ष है।

(४०२)

मन की ग्रन्थियों के खोल खोल कर जीवन की सारी उपयुक्त मार्ग सुझाने वाली बातें, मर्मज्ञ ऋषियों द्वारा पुस्तक बद्ध होकर ग्रन्थ बनती हैं। अर्थात् सब ग्रन्थियों को सुलझाने वाली पुसतक ग्रन्थ है ।

(४०३)

कितना भी अध्ययन हो, ममन उससे परे है, कितना भी मनन हो, अनुभूति उससे परे है और साक्षात्कार अनुभूति से भी परे है।

(४०४)

विवाह हो जाने से ही पति की प्राप्ति नहीं होती, पूर्ण प्राप्ति के लिए सारा जीवन परिश्रम करना पड़ता है। इसी तरह आसन पर बैठने से ही ईश्वर नहीं मिल जाता। वह तो निरन्तर साधना से, कई जन्मों के तप से प्राप्त होता है।

(४०५)

जीवन के पथ पर तो कई लोगों का मिलन तथा संग प्राप्त होता परन्तु मृत्यु मार्ग पर हमें अकेला ही चलना है। एकाकी पथ पर अवरोधों के कटंकों का कोई अन्त नहीं। इसी से मोह का बन्धन ढीला करते करते शून्य हो जाना अच्छा है।

(४०६)

हमारी इच्छा से तो यह संसार चलता नहीं, यहां तो सभी को अभीष्ट है आत्मा प्रशंसा, स्वसुखः अनुगामिता। यह कैसे आशा करें कि लोग झूठ न बोलें, बात न मरोड़ें, ठीक को गल्त और

गल्त को ठीक साबित न करें, समय की अनुकूलता सहज नहीं आती, उसके बिना ही चलना होगा।

(४०७)

कई बार अपने पक्ष की निर्दोषता और सच्चाई सिद्ध करते करते ही बातें उलझ जाती हैं। साधारण सी बात घोर समस्या बन जाती है। तब मन मसोस कर रह जाना पड़ता है। ऐस में क्या करें ? तटस्थता ही एक हल मिलता है तब।

(४०८)

अरे तू दूसरों से जो इच्छा करता है वह तो दूसरे पूरा नहीं कर पाते। लेकिन जब निराशा में तू तटस्थता धारण करता है तो दूसरे तुम्हारे से वैसी ही इच्छाएं करने लगते हैं। अपनी गल्ती कौन मानता है। कोई नीतिज्ञ ही ऐसे लोगों को सन्तुष्ट कर सकता है।

(४०९)

यहां बहुत सुख हैं, ऐश्वर्य हैं, साधन हैं वहां भी मानसिक तनावों की कमी नहीं है। स्वर्ग के सुख भी मानसिक शान्ति खरीद नहीं सकते। तब लगता है सुख साधनों का जुगाड़ सब व्यर्थ रहा। निस्पृह होकर किसी एकान्त में शान्ति प्राप्त हो जाए, तो वह बहुत बड़ा स्वर्ग है।

(४१०)

जहाँ अपनतत्व और सत्कार प्राप्त होता है वहाँ तो व्यक्ति स्वयमेव जुड़ता चलता जाता है। जहाँ उपेक्षा भाव हो वहाँ जाने को मन आनाकानी करता है।

(४११)

दुर्भाग्य यह नहीं कि जीवन में संघर्ष प्राप्त हुआ। दुर्भाग्य तो यह है कि प्राप्त संघर्ष को हमने ठीक ढंग से नहीं लड़ा। अन्यथा संघर्ष भरे जीवन से ही अनुभव के मोती मिलते हैं।

(४१२)

महा मुर्ख धन प्रतिष्ठा के कारण अकलमन्द गिना जाता है। महा पण्डित धनाभाव के कारण उपहास का पात्र बन जाता है लेकिन पण्डित की धन से शादी हो जाए तो विवेक खो जाने का भय होता है। कैसा है यह धन का जादू।

(४१३)

धन के मद में व्यक्ति सोचता है मैं सारी दूनियां खरीद सकता हुँ। लेकिन खरीदी हुई थोड़ी सी दूनियां भी सम्भालना कठिन हो जाता है। बुद्धि का चीरहरण होते ही लक्ष्मी जी को बाहर जाने के द्वार की भी अपेक्षा नहीं होती।

(४१४)

धन उतना ही अच्छा जिसकी सार सम्भाल आसानी से हो जाए और जीवन भी ठीक ढंग से चल निकले। बचा समय ईश्वर आराधना और सेवा के काम आए। धन पर नाग बन कर बैठने की नौकरी से राम बचाए।

(४१५)

इस बात का क्या मान करें कि हमने धन पा लिया, राज पा लिया। जो पा लिया उसे तो वापिस देना ही होगा। वह चीज़ पाओ जो वापिस न देनी पड़े। वह तो है केवल प्रभु का प्यार।

(४१६)

सत्य की रक्षा बड़ी दूरूह है, क्योंकि हर जीव के मन पर बड़ा मोटा मोटा माया का, झूठ का, स्वार्थ का पर्दा चढ़ा हुआ है। उस पर्दे से छन कर जो विचार वह सुनता है, वैसा ही उसका मन्तव्य बनता है अतः सत्य की लड़ाई में कौन ठीक, क्या कहें ?

(४१७)

जिस का जिससे स्वार्थ सन्तुष्ट होता है वह उसी से लिपटा रहता है। तब ठीक और गलत का भेद करने वाली बुद्धि मर जाती है। जीवन में कीच भर जाती है तो आत्मा रुदन करने लगती है पर हर समझाने वाला शत्रु लगता है।

(४१८)

सूर्य की किरणें महत् अन्धकार को भेद कर सर्वत्र फैल जाती हैं। कोई विभेद नहीं करती, परन्तु जिनके भाग्य में नहीं वह सर्वत्र फैले प्रकाश के होते हुए भी किरण मात्र के लिए तरस कर रह जाते हैं।

(४१६)

सागर की विशालता कहीं से भी छुओ सागर ही छुआ जायगा। ऐसा ही ईश्वरीय ज्ञान के विषय में सोचों तो मज़हवों से सारे झगड़े समाप्त।

(४२०)

दूसरे गलत सोच रहे हैं, यह दुःख पालने से क्या लाभ। समझाने से कोई समझेगा नहीं, गहरे पानी में तैरने दो अनुभव से सब ठीक हो जाएगा।

(४२१)

ऐ मन, न्याय का दण्ड़ तेरे हाथ में नहीं है। अतः तू किसी का बुरा मत सोच। सब अच्छा बुरा भगवान् की इच्छा पर छोड़ दे। वह जो भी करेगा, ठीक करेगा।

(४२२)

भगवान दत्तात्रय ने तुच्छ वस्तु से भी शिक्षा ग्रहण कर उसे अपना गुरू माना। २४ गुरू धारण किए। अच्छाई कहीं से भी चुन ली जाती है। हीरा गन्दगी में पड़ा हो तो भी उठा लिया जाता है। किसी भी मत, सम्प्रदाय धर्म की बातें अच्छी हैं तो मान लेनी चाहिए, बुरी छोड़ देनी चाहिए। बुराई के साथ अच्छाई भी क्यों छोड़ दी जाए !

(४२३)

सब अनर्थ यह जिह्वा करवाती है। इसी को दांतों के अन्दर रख। यदि बाहर निकालना भी हो तो तब निकलना जब कुछ शुभ करना हो, नहीं तो यह तुम्हें कहीं का नहीं छोड़ेगी।

(४२४)

"कुलर चल नहीं रहा तो उसके भीतर के पंखे के पार क्या है, दिखाई नहीं देता। जैसे ही पंख चला दिया पंखे के पार की खस खस की टट्टियां दृष्टि गोचर होने लगी। क्या यह गति ही नहीं, जो पार दर्शी हो गई। दूर दर्शन केन्द्र से सयन्त्रों द्वारा विद्युत गति के कारण दृश्य और ध्वनि टी. वी. पर स्पष्ट हो जाते हैं यदि ऐसा है तो अवश्य ही जप द्वारा गति देने का कार्य

ही अपने भीतर अदृश्य शक्तियों को दृश्य बना सकता है। क्या स्फटिक में पारदर्शिता का कारण भी उसके भीतर किसी गति की विद्यमानता है ? या और कुछ।

(४२५)

बहुत बोल लेता है व्यक्ति, तो कहता है, "थक गया, दिमाग खाली हो गया", मौन होना चाहता है। कुछ समय चुप चाप आराम करने पर फिर से स्वस्थ हो जाता है। मस्तिष्क की शिराएँ पूर्ववत् कार्य करने लगती हैं। कार्यों से थक एकान्त पाना नितान्त आवश्यक हो जाता हैं। एकान्त में मौन हो कर जो समय बिताया जाता है, कुछ ही समय बाद भीतर कोई ऐसी शक्ति जाग उठती है, जो भावों के चल चित्र चला देती है। और बहुत सा कुछ नया समझ में आने लगता है। एकान्त हमारी भीतरी बैटरी चार्ज करने के लिए विद्युत का कार्य करता है।

(४२६)

चेतनता में सुषुप्ति मिथ्या और सुषुप्ति में चेतनता मिथ्या। परन्तु चेतनता में सुषुप्ति बनी रही है। इसी तरह बनी रहती होगी प्रलय में सृष्टि क्रम की अनुभूति। और जब तक सृष्टि है, प्रलय का, मृत्यु का, महानाश का भय सदैव बना रहता है।

(४२७)

मज़हब की कटरता द्वेषका सूत्रपात है। जबकि तपश्चर्या के लिए अपनाई दृढ़ता उन्नति का सोपान है। हम आत्मोन्नति के हित नियम बना कर, उन पर चलें। न कि धर्म के नाम पर लड़ाई झगड़े करने की मनोवृत्ति अपनाएं। किसी भी धर्म में

अच्छाईयां होती हैं उनका आदर करना ही चाहिए। बुराईयाँ अपने धर्म में प्रवेश कर गई हों तो उनसे चिपके रहना मूर्खता है। बुराई के त्याग से भगवान् कभी अप्रसन्न नहीं होते।

(४२८)

लहरें समुद्र की सतह पर विलसती हैं परन्तु सागर नहीं जानता यह लहरें कितनी हैं। पृथ्वी सब प्राणियों को धारण करती है, परन्तु पृथ्वी स्वयं गणना नहीं कर सकती। वायु सर्वत्र विद्यमान है परन्तु वह अपना परिणाम भी नहीं जान सकती, आकाश कहाँ नहीं है, पर वह भी अपना विस्तार नहीं जानता। अग्नि हर स्थान पर है पर वह भी अपने बल से अनभिज्ञ है। फिर मनुष्य इस बह्माण्ड़ का पार कैसे पाए। एक सच्चिदानन्द भगवान ही जानते हैं कि एक नन्हें से नन्हें कतरे और विशाल से विशाल ब्रह्माण्ड़ की क्या गणना है, क्या बल है, क्या बजूद है।

(४२६)

बड़ी से बड़ी दार्शनिक बातें करने वाला जरूरी नहीं व्यवहार में भी उतना ही योग्य हो। दुनियां के व्यवहार में कुशल, विचार के क्षेत्र में शुन्य हो सकता है। यह दोनों ही अलग अलग पहलू हैं, जो दोनों में पारंगत हो, उसके क्या कहने।

(४३०)

सारी कहानी विवेक की है। विवेक हीन व्यक्ति का जीना निरर्थक हो जाता है। विवेक ही सार तत्व को ग्रहण करता है। बुद्धि के सुस्थिर होने से ही व्यक्ति महान से महान कार्य कर सकता है।

(४३१)

एक ऐसे वातावरण में जीना, जिसमें राग द्वेष, कामुकता, लालच, क्रोध, परनिन्दा भरे पड़े हो, मनुष्य को कभी ऊँचा नहीं उठने देते। ऐसे लोगों की संगति बार बार उसी गर्त में गिरा देती है। साधक इसी लिए एकान्त की ओर भागता है, अन्यथा भगवान तो सर्वत्र है। सुई की तरह ढुढंने नहीं पड़ते, बल्कि अपने अन्दर से बुलाने पड़ते हैं।

(४३२)

मन की मैल धोने के लिए एकान्त और प्रभु चिन्तन आवश्यक है। प्रभु चिंतन के लिए मैला नहीं शुद्ध मन चाहिए। जहाँ भगवान हैं वहां मैल नहीं यहाँ मैल है वहाँ भगवान का आवास नहीं।

(४३३)

राग, द्वेष की बातें न करो तो धीरे धीरे उन बातों का संस्कार भी धुंधला पड़ जाता है। यदि करते रहो तो एक बात से दूसरी, दूसरी से तीसरी, तीसरी से चौथी निकलती ही चली जाती है। कितना भी कोई सगा हो, शत्रु हो जाता है। फिर दूसरे की अच्छी बातें भी बुरी लगने लगती हैं।

(४३४)

मित्र पैदा करने के लिए अपने सारे जीवन के क्षण जाते हैं। परन्तु शत्रु पैदा करने के लिए एक क्षण पर्याप्त है।

(४३५)

सब घोड़ों के साथ भागने का प्रयत्न विफल मनोरथ है। अपनी अपनी जगह सब के कर्त्तव्य, अपनी अपनी कर्म समर्थ और भावनायों से होते हैं। गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल कर्म क्षेत्र में अपनी अपनी सब की अदाकारी है। हम अपनी अदाकारी अच्छी तरह सम्पन्न कर सकें, यही श्रेष्ठ है। सब के साथ भागने से तो मनुष्य कहीं भी नहीं पहुँचेगा।

(४३६)

गुण, कर्म, स्वभाव से जो हम सीख लेते हैं, हो सकता है जीवन किन्हीं और ही परिस्थितियों में हमें धकेल दे। तब जो कर्त्तव्य या परिस्थितियाँ सामने हों, उनके अनुकूल स्वयं को ढाले बिना जीवन नहीं चलता, कम से कम नारी जीवन की तो यही विडम्बना है। यदि प्राप्त परिस्थितियां बिल्कुल ही असहनीय न हो जाएँ, प्रयत्न न टूटने का ही रहना चाहिए।

(४३७)

मां कितने बच्चों को जन्म देती है, पालती, पोसती, खिलाती, पिलाती, सेवा सुश्रुषा करती है। अपना सब कुछ बच्चों पर न्यौछावर कर देती है लेकिन अधिकतर वृद्धावस्था में असहाय सी मजबूर हो जाती है। सन्तानों के पास मां के पास बैठले को न तो समय है न भावना। मां शिकायम नहीं करती पर सन्तानों की कृतघ्नता तो देखो।

(४३८)

जन्म घुट्टी में मिले संस्कार नहीं छूटते, अच्छे हों या बुरे। बुरे संस्कारों को छुड़ाना ऐसे ही है जैसे पतीले के नीचे से कालिख

की मोटी पर्तों को खुरचना। मानव स्वभाव की कालिख उतारने के लिए भी भगीरथ प्रत्यन करना पड़ता है।

(४३९)

यह दुनियां जब चलती है, तो अपनी गति में पीछे मुड़ कर नहीं देखती। चाहे यह फिर उन्हीं पुरातन स्थलों, संस्कारों और वायुमण्ड़लों से गुज़र जाती है। फिर वही ऋतु चक्र, वही क्रम दोहराती है। किन्तु काल के बीत जाने के बाद वापिस नहीं ला सकती। बड़े कष्ट का विषय तो यह है कि समय हर पल हमारे हाथों से फिसलता ही चला जाता है। हम निरुदेश्य इसे खोते चले जाते है। फिर भी चिन्तित क्यों नहीं है ? बेकार की बातों में समय का बहुत बड़ा भाग चला गया व्यर्थ, तो भगवान हमारी क्या सहायता कर सकते हैं।

(४४०)

हम जिस देवता से भी अपने को सम्बद्ध कर ले वह हमारा योगक्षेम वहम करेगा, तो अपना असम्मान या अवहेलना होने पर रुष्ट भी होगा। हर शक्ति हम जैसा कार्य करें वैसा फल देने को नियम बद्ध है। अन्तर है देवताओं की शक्तियाँ सीमित है और सर्व शक्तिमान भगवान की शक्ति अपरिमित है। वही सब का मूल स्रोत है, वह देवताओं का भी देवता है।

(४४१)

हर समय हम दूसरों को दोष देते रहें कि उन्होनें हमारे लिए यह नहीं किया, वो नहीं किया तो पुरा जीवन कोई सुख सन्तोष हमें छूने वाला नहीं है। ऐसी कागज़ की नाव पर बैठ कर सफर

क्यों करे जिसके हर क्षण फट जाने का भय हो। सोच का ढंग बदल लें कि हमने किसी के लिए क्या किया, क्या करना है, क्या सुख दे सकते हैं ? दूसरे करें ना करें यह सिर दर्द ही क्यों खरीदूँ ? ऐसा किया नहीं कि दुःख भागा नहीं।

(४४२)

कोई व्यक्ति सम्पूर्ण–तया ज्ञानी नहीं होता तथा कोई सम्पूर्णतया अज्ञानी भी नहीं होता। हर व्यक्ति में कुछ गुण, कुछ अवगुण होते हैं। गुणों का विकास ही मानव उन्नति का सोपान है ।

(४४३)

सूर्य के प्रकाश से वस्तुएं दिखाई देती हैं। अन्तर के प्रकाश से वस्तुओं के गुण अवगुण तथा प्रयोग दिखाई देते है।

(४४४)

मस्तिष्क की एक शिरा बन्द हो जाए तो व्यक्ति का सम्पूर्ण होशो हवास डगमगा जाता है, तो योग्य से योग्य व्यक्ति भी बेकार हो जाता है।

(४४५)

मन और मस्तिष्क मिल कर काम करें तो उससे गुणवत्ता आती है। दोनों बिखर जाएँ तो आसान से आसान कार्य भी कठिन प्रतीत होने लगता है।

(४४६)

जीवन प्रयोगशाला है। अपने अपने गुण, कर्म स्वभावनुसार प्रयोग किए जाते हैं। भगवान राम ने अपने प्रयोग किए अपने ढंग से, हर पग पर कर्म की मर्यादा की रक्षा करते हुए। समीक्षा

करते हुए, स्वंय को पग पग पर तोलते हुए, परीक्षा में डालते हुए तथा सुस्थिर रहते हुए। भगवान कृष्ण के प्रयोग का अपना लीलामय ढंग बिल्कुल अलग, चचंल बालक की तरह विद्रोह से जन मानस को परिवर्तित करने की क्षमता में ओत प्रोत, सौम्यता में वीभक्त का दिग्दर्शन, नीति के नव नव रूप दर्शाते हुए, लिंग भेद से परे, एक दिव्य प्रेम का संसार रचाते हुए, त्यक्त नारीत्व को संरक्षण और गौरव में जीने की क्षमता देते हुए, मर्यादाओं की रक्षा को नया स्वर देते हुए, जीवन को कई पहलूयों से सोचने का मौका उपस्थित कर देते हैं। इन दोनों महापुरुषों के जीवन से बहुत से प्रश्नों का उत्तर भी उन्हीं की जीवन शैली से प्राप्त होने की आशा है।

(४४७)

आँख देखती है, नही, कई बार आँख होते हुए भी नहीं देखती, दृष्टि आँख का गुण है, आँख दृष्टि का यन्त्र है, परन्तु देखने वाली तन्मात्रा दृष्टि से सूक्ष्म है जिसके कारण दृष्टि है और आँख देखने का निमित्त है। सब कुछ यथावत हो तो भी जीवात्मा न देखे तो कुछ नहीं दीखता और जीवात्मा को भी ईश्वर दिखाए तो देखता है। इस देखने की प्रक्रिया के पीछे ईश्वर सत्ता का आभास बाहर से हो न हो भीतर से किसी परम सत्ता के प्रतीत होने की आहट होती है जो अद्भुत है, महान है सर्व समर्थ है।

(४४८)

व्यक्ति की जीवात्मा प्रकृति और ईश्वरीय तत्व के बीच की कड़ी है। भौतिक धरातल पर प्रकृति के आवरण से ढका यह

रूप तिरोहित हो जाता है। परन्तु ईश्वर से एकात्मता प्राप्त होने पर लगता है कि जीव ईश्वर से भिन्न नहीं।

(४४६)

निर्मल जल की सतह में ठहरा तिनका भी दृष्टिगोचर होता है। निर्मल बुद्धि भी इसी प्रकार पारदर्शी हो जाती है। तभी सत्य, असत्य, ठीक, गलत का विवेक जागता है।

(४५०)

दिन चर्या में गृहस्थी में बार बार क्रोध करने की परिस्थिति उपस्थित हो जाती है। हर व्यक्ति अपने को ठीक और दूसरे को दोषी ठहराता है। अपनी सुविधा में जरा व्यवधान सहन नहीं होता। लाख समझायों मन विचलित होकर भला बुरा सोचने लगता है।शायद काम के आवेग में से भी ज्यादा कठिन है क्रोध का आवेग। जब क्रोध का आवेग संभल जाए, विचार सुस्थिर हो जाए तो मन सन्तुलित होगा।

(४५१)

बहुत कष्ट है, मनुष्य व्याकुल होता है। परन्तु जब वैसे ही कष्ट दूसरों को भी हो रहे हों, देख कर मनुष्य धीरज कर लेता है कि वह इस दर्द में अकेला नहीं है।

(४५२)

कुछ नहीं, बहुत लोग हैं जिनकी नाक पर चौबियों घण्टे क्रोध का नाग बैठा रहता है। एक चाहत पूरी हुई कि दूसरी ने फन उठाया, ऐसे लोग दूसरों की सुविधा या कष्ट का ज़रा भी

ध्यान किए बिना बोलते हैं, बात बात पर गलतियाँ निकालते हैं, किसी न किसी रास्ते सामने वाले को दोषी ठहरा ही देते हैं, सारे घर को नचाते हैं। ऐसे लोगों से दूसरे लोग दूर भागते हैं, क्यों कि क्रोधी व्यक्ति अपनी ही नहीं दूसरों के मन की शानित भी भंग किए रहते हैं। अकसर ऐसे लोगों का परिवारिक जीवन भी कटूता से भरा रहता है। न वह स्वयं मीठा बोलते हैं। न कोई उनसे मीठा बोलता है अन्त में भीषण लड़ाईयाँ होती हैं। गुस्सा नाश का कारण बनता है। ऐसे वातावरण में खुशियों का जीवन बहुत छोटा होता है। सुख और शान्ति की इच्छा हो तो वाकी इच्छाएँ छोड़नी ही पड़ेंगी, अन्यथा खुशियां आकाश पुष्प हो जाएंगी।

(४५३)

मन कभी खाली नहीं बैठता। हर समय इसे कुछ न कुछ सोचने को चाहिए। यदि काम की बात न हो तो कई हवाई किले यह तैयार कर लेता है, जो बेकार होते हैं। इस मन की कल्पना शक्ति को सकारात्मकता की तरफ मोड़ने को स्वाध्याय, संगतिकरण, शुभ कर्म और विद्वानों का संग चाहिए। अन्यथा जितनी खुराफत यह गढ़ लेता है, उससे बड़े बड़े नुकसान होने का भय रहता है ।

(४५४)

मनुष्य को ईश्वर के अनगिनत शक्तियां दी हैं। जिनके विषय में मनुष्य स्वयं भी कुछ नहीं जानता। यह शक्तियां, भीतर की शक्ति जगा कर असाध्य कार्य को भी साध्य बना देती हैं।

(४५५)

सर्वश्रेष्ठ होना महानता है। सर्वश्रेष्ठ अपने को समझना कई गलतियों करवा देता है। मिथ्या अभिमान बढ़ जाता है। आत्मोन्नति रूक जाती है। सर्व श्रेष्ठ बनने का प्रयत्न साधना है जिससे मनुष्य आत्म विष्लेषण करता है, विनम्र बनता है।

(४५६)

सारी दुनियां हमारी तरफ देखें, ऐसी हिरण्यकशिप, जैसी भावना आज भी मानव को दानव बना देती है। दानव तो अपनी सन्तान का भी मित्र नहीं होता। हम संसार की सेवा करें, इस भावना से मनुष्य देवता बनता है, फिर वह जाति, धर्म और लिङ्.ग भेद से ऊपर उठ कर सच्चा मानव बनता है, तब बिना चाहे भी संसार उसकी पूजा करता है।

(४५७)

ईर्ष्या प्रवृति से प्रभावित होकर जो कार्य किया जाता है उसमें कोई सुगन्ध नहीं रहती। मन की सरलता से किया कर्म दूसरों को सुख और अपने को मानसिक शान्ति देता है।

(४५८)

ईश कृपा होते ही भाग्योदय हो जाता है। जैसे काले घने बादल छंटते ही धूप निकल आती है। मनुष्य जान ही नहीं पाता कि यह दुःखों की काली बदली कैसे छंटी।

(४५६)

अपने पैदा किए सुख उपकरणों के हम दास हो जाते हैं, जिससे निकम्मापन हमें घेर लेता है। जैसे मकड़ी अपने बुने जाले में फँसी फँसी कीड़े खाती रहती है।

(४६०)

हमारे कर्त्तव्य एक दूसरे के प्रति, आज है कल नहीं होंगे। ऐसा नहीं होता, कर्त्तव्य निष्ठ को प्रतिपल जागयक रहना पड़ता है। सन्यासी होकर भी कर्त्तव्यों की समाप्ति नहीं होती अलबत्ता कर्त्तव्यों का घेरा बढ़ जाता है, क्योंकि घर से बाहर का संसार भी अपना हो जाता है। समाज सेवी समाज के प्रति कर्त्तव्य निष्ठ हो तो घर के प्रति अपने कर्त्तव्यों की उपेक्षा वहीं कर सकता है जिसे घर के लोग अपनी ओर से स्वतन्त्र कर दें अथवा परिवार ही ना बान्धे और समाज में कूद पड़े और जैसे मदर टैरेसा। अन्यथा घरों में भद्दा वातावरण बन जाता है।

(४६१)

कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का निर्णय कई बार अति कठिन स्थिति में पहुँच जाता है, एक तरफ कुआँ दूसरी तरफ खाई नज़र आती है। ऐसा धर्म संकट आ उपस्थित होता है कि बुद्धि जवाब दे देती है। ऐसी अवस्था में निर्णय ईश्वर पर छोड़ कर कुछ समय निष्क्रय हो जाओ समय टाल दो। ईश्वर मार्ग सुझा देता है और दुरुह से दुरुह स्थिति सहज हो जाती है, साथ ही आत्मविश्वास भी जाग उठता है।

(४६२)

वह घर धन्य है, जहां सारे परिवार के लोग परस्पर प्रेम पूर्वक एक दूसरे को समझते हुए, एक दूसरे के सुख दुःख का ध्यान रखते हुए, इस संसार में अपने और दूसरों के भले के कार्य करते हुए जीवन यापन करते हैं। बहुत सारी प्रतिभाएँ घर के लोगों के सहयोग से ही प्रति फलित होती हैं। अन्यथा कई महान कार्य होने से वंचित रह जाएँ, जिससे देश और समाज का हित होते होते रह जाए।

(४६३)

बहुत सा समय जो हम दूसरो की बुराईयाँ खोजने में लगा देते हैं यदि अपनी बुराईयाँ खोजने में लगा दें तो हम कुन्दन हो जाएं।

(४६४)

दूसरों को अपने से घटिया समझना ही तो घटियापन है। यही से सारे मनमुटाव और झगड़े शुरू होते है। जब कोई बड़ा आदमी किसी छोटे आदमी को घटिया समझ कर अवहेलना करता है, तो कई बार वही उसके नाश का कारण बन जाता है।

(४६५)

जितनी शक्ति हम अपने शरीर को संवारने और सुखी करने में लगाते है उस से सहस्त्रवाँ हिस्सा हम अपने मन को सजाने संवारने में लगाए तो हमारा जीवन सार्थक हो जाए। तन को सजाने से मन का कमीनापन नही छुपता, न ही प्रतिष्ठा की सही सुगन्ध फैल सकती है।

(४६६)

मुझे दुनियां वैसी ही दिखेगी जैसा मेरे अपने ह्वदय का रंग है। यदि वैसी नहीं है तो हो जाएगी। इस लिए दूसरों को हर समय सन्देह की दृष्टि से देखने वाला व्यक्ति कभी सुखी नहीं हो सकता।

(४६७)

बात ही तो की है। नहीं भैया, बात ही बड़ी बात है। बातों से शत्रु पैदा होते हैं, बातों से ही दोस्त, बातों से हित चिन्तक और बातों से ही घोर समस्याएँ पैदा होती है।

(४६८)

बात अच्छी भी हो तो बात का अन्दाज कैसा है, इसका बहुत प्रभाव होता है। गुस्से से, तेजी से कही बात से दूसरा चिढ़ जाता है, ताने से की बात दूसरे को आग बबुला कर देती है। सहज से मित्रता के अन्दाज में कही वही बात पल में वातावरण में मधुरता घोल देती है। अतः बात ही नहीं बात के अन्दाज का भी अपना मोल होता है।

(४६९)

मन को अशांत ही रखना हो तो कोई कठिनाई नहीं, कोलाहल पूर्ण दुनियां में घुसे रहिए। बात बात पर झगड़िए। दूसरों की बुराईयां देख देख कर कुड़ते रहिए, चटखारे ले ले कर दूसरों को बुरा भला कहते रहिए, मन कभी शान्त हो जाए तो माने।

(४७०)

मन जैसा आवरण आत्मा के ऊपर डाले रहता है, वैसा ही हमारा विचार बना रहता है। सूर्य कितना भी प्रखर हो, काली बदली जब बीच में आकर उसे ढक लेती है तो दोपहर भी रात्रि प्रतीत होती है। लेकिन सूर्य का प्रकाश और ताप वैसा ही रहता है। बदली छटी कि प्रकाश आया।

(४७१)

महापुरूषों के निरन्तर संसर्ग से मन चोट खाता रहता है। आखिर एक एक बुराई स्वयं को ही चुभने लगती है। बार बार की चोट व्यक्ति को बुराई से हटा देती है।

(४७२)

सयानों ने कहा छाछ और बात बढ़ाने में कुछ खर्च नहीं होता छाछ में पानी और बात में मीन मेख डालते जाइए कभी खत्म नहीं होगी।

(४७३)

गुस्से को खत्म करना हो तो ठण्ड़ा पानी पीजिए। एकान्त में चले जाओ, कागज पेन्सिल लेकर लिखते जाओ। जब सब उगल लो, फाड़ कर फैंक दो। गुस्सा हट जाएगा।

(४७४)

सच ही कहा किसी ने पहले तोलो, फिर बोलो। बोलते ही रहो तो तुम स्वयं तुल जाओगे और अपने मुँह से निकली गलज बात अपने मुँह पर ही थप्पड़ मारती रहेगी।

(४७५)

संसारिक असक्ति से दूर हटने के लिए मनुष्य समाज, मन्दिर, धर्मशाला इत्यादि बनवाता है। फिर उनमें आसक्त हो जाता है। आश्रितों की आवश्यकता पूर्ति का लक्ष्य भी लाभ हानि के लक्ष की तरफ बढ़ जाता है। मानव स्वभाव की यह कृपणता उद्देश्य को दूषित कर देती है। कार्य की महत्ता स्वार्थ में लिपट कर रह जाती है।

(४७६)

स्वाध्याय करते हुए आत्म विश्लेषण की आदत मानव का मार्ग प्रशस्त करती है। ज्ञान का अभिमान भी व्यक्ति का माथा खराब कर देता है। आत्म विश्लेषण से हमारी कमजोरियां हमारे सामने आ जाती हैं। जिससे अपने भीतर स्वयं को सुधारने और निराभिमानी बनने का भाव सक्रिय होता है।

(४७७)

मृत्युं तो अवश्यम् भावी है। उस पल को जीने के लिए तैयारी हर पल करनी है हमें। तैयारी के लिए शुभ कर्मों में प्रवृत्ति लगाना, ईश्वर को स्मरण रखना, दूसरों के दुःख की दवा बनना, विषयों से चित्त हटाना पड़ेगा। यदि हम कहें मन जो कहेगा मानेगें तो मन हमें कभी ठीक मार्ग नहीं दिखाएगा न ही मृत्यु क्षण का जीना सिखाएगा हां डरपोक, स्वार्थी जरूर बना देगा।

(४७८)

काल के गर्भ से पैदा होता है सब कुछ, काल ही पालता है और अन्त में काल ही अपने गर्भ में वापिस समेट लेता है। काल की

अवाध गति को कोई नहीं रोक सकता। इसी काल के गर्भ में हम सब बैठे हैं। काल को अपेक्षा है, हम उसका सदोपयोग करें। वह हमारा कल्याण करे।

(४७६)

अच्छी आदत का अभ्यास ही स्वभाव बन जाने से क्या कठिनाई रही। अभ्यास से पहल वान, अभ्यास से संगीत शास्त्री, अभ्यास से लेखक, अभ्यास से वैज्ञानिक, अभ्यास से संयमी, अभ्यास से कर्म शील बनता है व्यक्ति। अभ्यास से कठिन से कठिन विषय हस्तामलक हो जाता है। अतः एक एक क्षण का अभ्यास पाताल से पर्वत शिखर पर पहुँचा देता है मानव को।

(४८०)

वेद सर्वोत्तम हैं। वेदों की शिक्षा मानव कल्याण करने वाली है। वेद की ऋचाओं से भगवान का स्तुति गान करके वेद की शिक्षा अपने भीतर ढाल लेना मनुष्य को सचमुच देवता बना सकता है। इसी से वेद को जानने वाला कहता है यह चारों वेद मेरी रक्षा करते हैं। करते रहेगें, क्योंकि धर्मो रक्षति रक्षिता। जो धर्म का पालन करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है।

(४८१)

घोर अन्धकार में छोटा सा दीपक मार्ग चलने में हमारी सहायता करता है। यत्न से दीपक को जलाए रखे तो उषा की बेला आयेगी ही। उषा के पीछे पीछे तो प्रचण्ड प्रकाश किरणें आ ही रही होती हैं।

(४८२)

संसार भर के धर्मो ने एक स्वर से एक सत्य का मण्डन किया कि इस पुरे ब्रह्माण्ड में केवल एक ईश्वर का सम्राज है। वही निर्माता, पालन कर्ता संहार कर्ता और सर्व व्यापक, सब में समाया हुआ है। केवल उसी की शरण में जाने से कल्याण हो सकता है। फिर भी आश्चर्य है कि लोग परस्पर झगड़ते ही रहते हैं कि उस एक मात्र परमात्मा को प्राप्त करने का किसका मार्ग सही है। इस झगड़े में आम जनता गुमराह होती है, ऐसा घपला खाती है कि किसी राजनैतिक पार्टी में या किसी मत मतान्तर में फर्क ही समझ में नहीं आता।

(४८३)

मूर्ति में जिस ईश्वर को प्रतिपादित करके मन को लगाने का प्रयत्न किया जाता है, उससे ईश्वरीय सत्ता क्या है, यह जिज्ञासा बलवती होती है। ईश्वर का जैसा भान अपने भीतर होता है मूर्ति को निरर्थक कर देता है। मूर्ति अलग छूट जाती है, छोटा सा शलिग्राम या पत्थर तो उस महान सत्ता के आगे बौना है। असीम को सीमा में बान्धना कैसा। मन को असीम में विहार करने दो, जिससे वह विश्व की आत्मा का स्पर्श कर सके। जन जन के कष्ट को महसूस कर सके। फिर क्या है जो वो नहीं है, क्या है जो उसका नहीं है।

(४८३)

विषयों का सेवन, चिन्तन तो विषयानुरक्ति ही बढ़ाते हैं, सन्तुष्टि नहीं होती। कोई भी स्वाद, कोई आदत दुखदायी हो



जाती है, जब उसकी पूर्ति न की जा सके। सेवन करना छोड़ कर ही अनुरक्ति भी कम होने लगेगी। यह प्रकृति तो हमेशा अपनी और आकर्षित करने में लगी रहती है इसके खिंचाव को कम करने के लिए ही स्वाध्याय, महापुरुषों का सत्संग, ईश स्मरण, आवश्यक है। ईश ही ध्येय है, ईश ही साधन।

(४८४)

ईश्वर की मूर्ति हो ही नहीं सकती क्योंकि उसका कोई आकार ही नहीं। मूर्तियां तो महापुरूषों की होती हैं जिन्होनें इस धराधाम पर जन्म लिया। कल्याण के कार्य किए। मूर्तियाँ जिन महान आत्माओं को अकिंत करती हैं उनके आदर्श, आचारण, कथन का चिन्तन करना और अपने जीवन में उनके गुणों को धारण करना, यह अपेक्षित है। मूर्तियाँ हमारी सास्कृतिक धरोहर है, अपने पुरुषों की याद हैं। उनका निरादर करना तो वांछनीय नहीं है। महापुरुषों का जीवन दर्शन उनकी रूप रेखा को सामने रखकर समझना अच्छा ही है। उससे हमारा मन सुस्थिर होता है, गुणों का संचय होता है, महापुरुषों के जीवन को पुनः पुनः दोहराने से जीवन में नेतृत्व मिलता है मूर्ति बहुत अर्थ रखती है परन्तु मूर्ति ईश्वर नहीं होती। ईश्वर तो यज्ञ है, यज्ञ करता है, यज्ञ करने का ही आदेश देता है। सूर्य, अग्नि, वायु, जल, आकाश, पृथ्वी सब के द्वारा जीव मात्र की सेवा करता है। अन्न धन धान्य से भरपूर करता है और मानव को सही सन्देश देता है कि ऐसे ही शुभ कर्म मानव भी करे। धूप दीप दिखा कर धण्टी बजा कर पूजा नहीं हो जाती। समय का घड़ियाल हमें सावधान करने के लिए बज रहा है उस घड़ियाल की आवाज़

को सुनना है, सावधान होना है, उसके यज्ञ में योगदान देना है। हमें ईश्वर की आवश्यकता है, उसके बिना जीवन सम्भव नहीं है अतः उसी का आश्रय लेना है।

(४८५)

चिन्तन सुधा के इस अंक को यही समाप्त करती हूँ। चिन्तन निरन्तर चलता है, चलना चाहिए और चलता रहेगा। क्योंकि चिन्तन से ही जीवन के अनमोल मोती प्राप्त होते हैं जीवन को दिशा देने के लिए, मन के धुन्धलके साफ करने के लिए, पग पग पर अपने को सुस्थिर करने के लिए, निरन्तर चिन्तन चाहिए, चिन्तन से परम तत्व ईश्वर प्राप्त होता है। अतः उस महान प्रभु के सुख स्वरूप का ध्यान हम हमेशा करें।

कस्मै देवाय हविषा विधेम्

ॐ तत्सत्



मन के पात्र में ढले चिन्तन सुधा,
इक इक रन्द्र में फैले उस की प्रभा।
नीले स्वच्छ नभ पर रवि का रथ चले,
निशा में चन्द्रिका से सारा तम गले।
द्वन्द्वों में खुले नाम की एक चुटकी,
भीतर बाहर हो एक सी छटा छिटकी।
स्चप्न मेरा प्रिय, साकार तुम करना,
सम्पूर्ण दोष हर, मेरे ह्रदय में स्वयं ढलना।

कृष्णा गुप्ता